वार्षिक रु. १००, मूल्य रु. १२

विवेक ज्योति

वर्ष ५६ अंक ३ मार्च २०१८

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम
रायपुर (छ.ग.)

॥ आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च॥

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

मार्च २०१८

प्रबन्ध सम्पादक
स्वामी सत्यरूपानन्द

सम्पादक
स्वामी प्रपत्त्यानन्द

सह-सम्पादक
स्वामी मेधजानन्द

व्यवस्थापक
स्वामी स्थिरानन्द

वर्ष ५६
अंक ३

वार्षिक १००/– **एक प्रति १२/–**

५ वर्षों के लिये – रु. ४६०/–
१० वर्षों के लिए – रु. ९००/–
(सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक मनिआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाएँ
अथवा निम्नलिखित खाते में सीधे जमा कराएँ :
सेन्ट्रल बैंक ऑफ इन्डिया, **अकाउन्ट नम्बर** : 1385116124
IFSC CODE : CBIN0280804
कृपया इसकी सूचना हमें तुरन्त केवल ई-मेल, फोन, एस.एम.एस. अथवा स्कैन द्वारा ही अपना नाम, पूरा पता, **पिन कोड** एवं फोन नम्बर के साथ भेजें।
विदेशों में – वार्षिक ३० यू. एस. डॉलर;
५ वर्षों के लिए १२५ यू. एस. डॉलर (हवाई डाक से)
संस्थाओं के लिये –
वार्षिक १४०/– ; ५ वर्षों के लिये – रु. ६५०/–

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम,
रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)
विवेक-ज्योति दूरभाष : ०९८२७१ ९७५३५
ई-मेल : vivekjyotirkmraipur@gmail.com
वेबसाइट : www.rkmraipur.org
आश्रम : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९
(समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक)
रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

अनुक्रमणिका

मार्च माह के जयन्ती और त्योहार

१	होली, चैतन्य महाप्रभु
५	स्वामी योगानन्द
२५	रामनवमी
३१	हनुमान जयन्ती

आवरण-पृष्ठ के सम्बन्ध में

स्वामी विवेकानन्द की यह मूर्ति रामकृष्ण मिशन आश्रम, ग्वालियर की है ।

विवेक ज्योति के अंक ऑनलाइन पढ़ें : www.rkmraipur.org

क्रमांक	विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना के सहयोग कर्ता	प्राप्त-कर्ता (पुस्तकालय/संस्थान)
४०६.	श्री आशीष कुमार बॅनर्जी, शंकरनगर, रायपुर	अवंतिबाई लोधी शास. महाविद्यालय रामाटोला,राजनांदगाँव
४०७.	स्व. श्री सीताराम राय, ईदगाह हिल्स, भोपाल (म.प्र.)	हरिवदन पदमाबेन ठाकोर कॉमर्स वुमेन्स कॉलेज, अहमदाबाद
४०८.	” ”	के.के. एम. कॉलेज, जमुई (बिहार)
४०९.	” ”	चैदुर कॉलेज, मु./पोस्ट-गोहपुर, जिला-सोनितपुर, (असम)
४१०.	” ”	गवर्नमेंट मॉडल साईंस कॉलेज, सिविल लाईन्स, रीवा (म.प्र.)
४११.	” ”	गवर्नमेंट पी.जी. कॉलेज, बांसवाड़ रोड, प्रतापगढ़ (राज.)
४१२.	” ”	शासकीय गुंडाधुर महाविद्यालय, कोण्डागाँव (छ.ग.)
४१३.	” ”	महाराजा लक्ष्मीश्वर सिंह मेमोरियल कॉलेज, दरभंगा (बिहार)
४१४.	” ”	धिंग कॉलेज, मु./पोस्ट - धिंग, जिला - नगाँव (असम)
४१५.	” ”	गवर्नमेंट कॉलेज, भीम नंदावत, भीम, जि.राजसमन्द (राज.)
४१६.	” ”	गवर्नमेंट नेहरू डिग्री कॉलेज, बुढ़ार जिला-शहडोल (म.प्र.)
४१७.	श्री अमृत लाल शाण्डिल्य, कपन,अकलतरा (छ.ग.)	सरस्वती शिशु मंदिर, कपन, (अकलतरा) जि.जांजगीर-चाँपा
४१८.	श्री गणेश शंकर देशपांडे, पदमनाभपुर, दुर्ग (छ.ग.)	रानी सूर्यमुखी देवी शास. महाविद्यालय, छुरिया, जि.राजनांदगाँव
४१९.	” ”	कॉलेज ऑफ नर्सिंग, गवर्नमेंट मेडिकल कॉलेज, नागपुर
४२०.	” ”	प्रमथेश बरूवा कॉलेज, गौरीपुर, वार्ड न.४, जि.धुबरी (असम)
४२१.	” ”	गवर्नमेंट कॉलेज, नदौती रोड, गंगापुर सिटी, सवाई माधोपुर
४२२.	” ”	गवर्नमेंट माधव सदाशिवराव गोलवलकर कॉलेज, रीवा (म.प्र.)
४२३.	सुश्री स्नेहप्रभा सक्सेना, उधम सिंह नगर (उ.ख.)	बाल निकेतन बिध मंदिर, कालुवास, जि.- बीकानेर (राज.)
४२४.	” ”	महर्षि विद्या मंदिर, मेलाघाट रोड,खटीमा, जि.उधमसिंह नगर
४२५.	” ”	गवर्नमेंट लॉ कॉलेज, एस.के. कॉलेज कैम्पस, सीकर (राज.)
४२६.	” ”	शा. लाल श्याम शाह महाविद्यालय मानपुर, जि.राजनांदगाँव
४२७.	” ”	इंस्टीट्यूट ऑफ नर्सिंग एजुकेशन, भायकुला, मुम्बई (महा.)
४२८.	....	गवर्नमेंट हाई स्कूल जामगाँव, पो. देवभोग, जि.-गरियाबंद
४२९.	श्री नुनिया राम मास्टर, चंडीगढ़	के.वी.के. डी.ए.वी. कॉलेज फॉर वुमेन्स, करनाल (हरियाणा)
४३०.	” ”	डिस्ट्रीक्ट इंस्टीट्यूट ऑफ एजुकेशन एंड ट्रेनिंग, गुड़गाँव
४३१.	” ”	आर्य पी.जी. कॉलेज, जी.टी. रोड, पानीपत (हरियाणा)
४३२.	” ”	डिस्ट्री.इंस्टी. ऑफ एजुकेशन एंड ट्रेनिंग,मत्तरश्याम, हिसार
४३३.	श्री विनय कुमार मल्लिक, मुज़फ्फरपुर (बिहार)	मानस सतसंग आश्रम पुस्तकालय, अहरी, औरंगाबाद (बिहार)
४३४.	श्री झाडूराम वर्मा, तुलसी (नेवरा) जि.रायपुर	शा. हायर सेकण्डरी स्कूल, मढ़ी, वाया-बैकुंठ, जि.रायपुर
४३५.	श्री रामकृष्ण शुक्ल शास्त्री, नेपानगर, जि.बुरहानपुर	सनराइज कॉन्वेन्ट+पब्लिक स्कूल, खरगीपुर, प्रतापगढ़ (उ.प्र.)

वर्ष ५६ मार्च २०१८ अंक ३

श्रीरामाष्टकम्

भजे विशेषसुन्दरं समस्तपाप खण्डनम् ।
स्वभक्तचित्तरञ्जनं सदैव राममद्वयम् ।।
जटाकलापशोभितं समस्तपापनाशकम् ।
स्वभक्तभीतिभञ्जनं भजे ह राममद्वयम् ।।
निजस्वरूपबोधकं कृपाकरं भवापहम् ।
समं शिवं निरञ्जनं भजे ह राममद्वयम् ।।
सप्रपञ्चकल्पितं ह्यनामरूपवास्तवम् ।
निराकृतिं निरामयं भजे ह राममद्वयम् ।।
निष्प्रपञ्चनिर्विकल्पनिर्मलं निरामयम् ।
चिदेकरूपसन्ततं भजे ह राममद्वयम् ।।
भवाब्धिपोतरूपकं ह्यशेषदेहकल्पितं ।
गुणाकरं कृपाकरं भजे ह राममद्वयम् ।।
महासुवाक्यबोधकैर्विराजमानवाक्पदैः ।
परब्रह्मव्यापकं भजे ह राममद्वयम् ।।
शिवप्रदं सुखप्रदं भवच्छिदं भ्रमापहम् ।
विराजमानदेशिकं भजे ह राममद्वयम् ।।
रामाष्टकं पठति यः सुकरं सुपुण्यं
व्यासेन भाषितमिदं शृणुते मनुष्यः ।
विद्यां श्रियं विपुलसौख्यमनन्तकीर्तिं
सम्प्राप्य देहविलये लभते च मोक्षम् ।

पुरखों की थाती

अष्टौ गुणा पुरुषं दीपयन्ति
प्रज्ञा सुशीलत्वदमौ श्रुतं च ।
पराक्रमश्चाबहुभाषिता च
दानं यथाशक्ति कृतज्ञता च ।।५८९।।

– ये आठ गुण व्यक्ति के चरित्र को आलोकित करते हैं – विवेक, सुशीलता, इन्द्रिय-निग्रह, ज्ञान, वीरता, वाणी का संयम, यथाशक्ति दान और कृतज्ञता ।

अम्बा यस्य उमादेवी जनकः यस्य शंकरः ।
विद्यां ददाति सर्वेभ्यः स नः पातु गजाननः ।।५९०।।

– जिनकी माता पार्वती हैं, जिनके पिता शंकरजी हैं, जो सबको विद्या प्रदान करनेवाले हैं, ऐसे गणेशजी हमारी रक्षा करें ।

अनित्यानि शरीराणि विभवः नैव शाश्वतः ।
नित्यं सन्निहितः मृत्युः कर्तव्यः धर्म-संग्रहः।।५९१।।

– जब शरीर अनित्य है, धन-सम्पदा अल्प काल के लिये है और मृत्यु सदा साथ लगी रहती है, तो सत्कर्म में लगे रहना ही एकमात्र उचित कर्तव्य है ।

दुर्जनः प्रियवादीति नैतद्विश्वास-कारणम् ।
मधु तिष्ठति जिह्वाग्रे हृदये तु हलाहलम् ।।५९२।।

– दुष्ट व्यक्ति यदि मीठी-मीठी बातें करता हो, तो भी इस कारण उस पर विश्वास नहीं कर लेना चाहिये; क्योंकि मधु तो केवल उसकी जिह्वा पर ही रहता है, परन्तु उसके हृदय में महा भयंकर विष रहता है ।

विविध भजन

होरी खेलत हैं गिरधारी

मीराबाई

होली खेलत हैं गिरधारी ।
मुरली चंग बजत डफ न्यारो संग जुबती ब्रजरानी ।।
चन्दन केसर छिड़कत मोहन अपने हाथ बिहारी ।
भरि भरि मूठ गुलाल लाल चहुँ देत सबनपै डारी ।।
छैल छबीले नवल कान्ह संग स्यामा प्राण पियारी ।
गावत चार धमार राग तहँ दै दै कल करतारी ।।
फाग जु खेलत रसिक साँवरो बाढ़्यो रस ब्रज भारी ।
मीराकूँ प्रभु गिरधर मिलिया मोहनलाल बिहारी ।।

जीवन का है सार

भानुदत्त त्रिपाठी 'मधुरेश'

प्यार बिना ओ प्यारे भाई, क्या रखा संसार में ।
जीवन का है सार सदा ही सच्चे पावन प्यार में ।।
प्यार सत्य शिव सुन्दरता की चिर मंगलमय मूल है,
प्यार बिना विज्ञान-ज्ञान की सारी उन्नति धूल है,
हिम गल कर बन प्यार उमड़ता नदियों की जलधार में ।
प्यार बिना ओ प्यारे भाई क्या रक्खा संसार में ।।
प्यार बिना सम्भव न कभी भी सहज मनों का मेल है,
प्यार सदा सबको सुख देता, ज्यों दीपक की तेल है,
प्यार बिना है स्वाद न कुछ भी अग-जग के अधिकार में ।
प्यार बिना ओ प्यारे भाई क्या रक्खा संसार में ।।
ऐसा कौन कभी जो जग में नहीं प्यार को चाहता,
प्यार सदा ही अन्तस्तल की गहराई को थाहता,
प्यार बिना जीवन की नौका फँस जाती मझधार में ।
प्यार बिना ओ प्यारे भाई क्या रक्खा संसार में ।।
नहीं प्यार-सा अमृत कहीं भी प्यार सदा परमेश है,
पुण्य प्यार की महिमा जग में देख रहा मधुरेश है,
प्यार परम आधार सभी के भवनिधि से उद्धार में ।
प्यार बिना ओ प्यारे भाई क्या रक्खा संसार में ।।

होरी खेलन आयो

स्वामी राजेश्वरानन्द सरस्वती

होरी खेलन आयो सखी बाबा नन्द जू को जायो ।
चंचल नयन बयन रसखाने मुख अति लगत सुहायो ।।
श्याम स्वरूप सहज मन मोहत जोहत हीय हिरायो ।
सखी बाने चित्त चुरायो ।। होरी खेलन ...
मोर पंख सिर कानन कुण्डल केशर तिलक सुहायो ।
नासा मणि घुंघराली अलकै मोहि देखि मुस्कायो ।।
मेरे उर भाव जगायो ।। होरी खेलन ...
कर कमलन्ह में लै पिचकारी मौ पै रंग बरषायो ।
मद न रह्यो मदन को सजनी देखत रूप लजायो ।।
मेरो तन-मन हरसायो ।। होरी खेलन ...
सुनि सन्देश राधिका रानी सखि समूह बुलवायो ।
यदुनन्दन श्री श्याम सुन्दर को कुंजन माँहि घिरायो ।।
फाग को मजा चखायो ।। होरी खेलन ...
जाको पार न पावत कोउ वेद नेति कह गायो ।
'जन राजेश' आज उन प्रभु को गोपिन नाच नचायो ।।
बिरज में आनन्द छायो ।। होरी खेलन ...

प्रभु तेरी चेरी बहुत सताये

डॉ. सत्येन्दु शर्मा

प्रभु तेरी चेरी बहुत सताये ।
रूप मान दौलत दिखलाकर बारम्बार नचाये ।।
मोहिनी सूरत लेकर आये, नैनन तीर चलाये,
मूक निमन्त्रण पाकर मनवाँ पाने को ललचाये ।
मन इतना कमजोर प्रभुजी पाने को ललचाये ।। प्रभु..
भोग की देवी बनकर आये तृष्णा खूब जगाये ।
रंग-बिरंगे भोग दिखाकर मनवाँ को ले जाये ।। प्रभु..
आदर मान की देवी बन यह ऐसा भरम दिखाये ।
औघरदानी का पद पाया बिन गुरुमन्त्र सिखाये ।। प्रभु..

भारतीय संस्कृति के दो सुदृढ़ स्वर्णस्तम्भ

भारतीय संस्कृति राष्ट्रीय, सामाजिक धार्मिक और सर्वोपरि आध्यात्मिक चेतना की जागृति की आधारशिला है। हमारी संस्कृति की प्राचीन परम्परा, लोकप्रथा, पर्व-त्योहार आदि सभी एक विशेष सन्देश लेकर आते हैं और मानव में शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और आध्यात्मिकता की नई स्फूर्ति का, नए उत्साह का और नई संरचनात्मक शक्ति का संचार करते हैं। मानव में सोत्साह सर्जनशीलता की उद्‌भावना संस्कृति के लिए विहित है। संस्कृति संस्कार से बनी है। बृहत् हिन्दी कोशकार संस्कृति का शाब्दिक अर्थ करते हैं – पूरा करना, शुद्धि, सुधार, परिष्कार, निर्माण, पवित्रीकरण, सजावट, निश्चय और उद्योग। इसके अतिरिक्त उन्होंने एक महत्त्वपूर्ण अर्थ किया है – आचरणगत परम्परा, सभ्यता का वह रूप जो आध्यात्मिक एवं मानसिक वैशिष्ट्य का द्योतक होता है।

मानव-जीवन में कई करणीय संस्कार होते हैं, जो उन्हें शुद्ध, पवित्र और पारिमार्जित करते हैं। जैसे बच्चों के प्रारम्भिक अन्नप्राशन संस्कार, मुंडन संस्कार, उपनयन संस्कार, विद्याध्ययन संस्कार, ये सभी उनके तन-मन-बुद्धि के परिमार्जन, सशक्त और रचनात्मक बनाने के लिये हैं। उनके जीवन को सभ्य समाज के अनुकूल और समाज के लिये उपयोगी बनाकर जीवन को कृतार्थ बनाने में सहयोगी हैं।

भारतीय साहित्य गगन में प्रखर सूर्यवत् देदीप्यमान महान ललित निबन्धकार डॉ. विद्यानिवास मिश्र जी ने अपने व्याख्यान में डॉ. नरेन्द्रदेव का उद्धरण देते हुए कहा था, संस्कृति मानव-मन की खेती है। जैसे भूमि को उर्वर बनाने हेतु उसे अनेक बार जोतते हैं, उसकी मिट्टी को उलट-पलट कर तैयार करते हैं, ठीक उसी प्रकार चित्त को मथकर उसकी सुषुप्त ऊर्जा को बाहर प्रकट की जाती है।

हमारी मनोवृत्ति, हमारे चाल-चलन, हमारे मनोभाव और हमारे सत्कर्मों से हमारे सच्चरित्र का निर्माण होता है। हमारी संस्कृति इनका परिमार्जन कर हमारे चारित्रिक निर्माण में सहायक होती है।

संस्कार हमारे अन्त:स्थ विद्यमान अनन्त शक्ति के प्रस्फुटन में सहायक होते हैं। संस्कृति सदा हमें सत्पथ पर सक्रिय करती है, इसलिए संस्कृति को डॉ. विद्यानिवास मिश्र जी गतिशील मानते थे।

सोत्साह साधना का नवारम्भ

भारतीय संस्कृति के सुदृढ़ स्वर्ण-स्तम्भ हैं, संस्कारों के साथ पर्व, त्योहार, धार्मिक अनुष्ठान आदि। पर्वों में होली, रामनवमी, गुरुपूर्णिमा, श्रीकृष्णजन्माष्टमी, दुर्गापूजा, नवरात्रि, दीपावली, कालीपूजा आदि बहुत महत्त्वपूर्ण माने जाते हैं। इनका प्रभाव जन-मानस पर गहरा पड़ता है। मार्च के महीने में होली और रामनवमी दोनो पर्वों का समागम है। इसलिए इन पर थोड़ा विचार आवश्यक है।

पहला स्वर्ण-स्तम्भ

होली का पर्व भारतीय संस्कृति का प्रमुख सुदृढ़ स्वर्ण स्तम्भ है, जो राष्ट्रीय एकता, धार्मिक समरसता, सौहार्द और परस्पर-प्रेम को सबमें संचारित करता है, समस्त मानवता को एक सूत्र में सप्रेम ग्रथित करता है। यह मानव में निहित मानवता और देवत्व की प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति में सहायता करता है। मानव के स्वाभाविक सच्चिदानन्द स्वरूप को समस्त प्राणियों में विकिरित करता है। यह पर्व नई उमंग, अभिनव उच्छ्‌वास, नई ऊर्जा की उद्‌भावना और संवर्धन करता है, यह लोकरंजन, लोकसुखाय रचनात्मक दिशा में अग्रसर करता है।

होली वर्ष का अन्तिम पर्व है, मानो कोई जीवन भर तप-साधना करे और अन्त में उसे उसके जीवन-लक्ष्य, परमानन्द की प्राप्ति हो जाय। वर्ष भर विभिन्न ऋतुओं – ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त, शिशिर की शीतोष्णता को सहन करते हुए अन्त में सुखद बसन्त का आगमन होता है। सभी जीवधारी,

यहाँ तक कि पेड़-पौधों, वृक्ष-लताओं में भी नवमंजरी, नव किसलय का उदय होता है, सर्वत्र उल्लास का, उमंग का आनन्दोत्सव का वातावरण रहता है। वृक्ष नये किसलयों और कुसुमादि से परिपूर्ण हो जाते हैं। भ्रमर नव पुष्प-परागपान में एक पुष्प-लता से दूसरे पर मँडराते रहते हैं, मानो नव आनन्द-राग में मुक्ति का गीत गा रहे हों। मानो चर-अचर सबमें बसन्त राग का स्वर गूँजने लगता है।

पवन बहता है, कोयल कूकती है। कृषक अन्न-भंडार से पूर्ण और प्रसन्न रहते हैं। तभी तो भगवान श्रीकृष्ण ने कहा कि मैं ऋतुओं में बसन्त हूँ – **ऋतूनां कुसुमाकरः**।

साधक के लिए भी बसन्त ऋतु की अनुकूलता उपयोगी हो सकती है। इसमें न अधिक ठण्डी, न अधिक गर्मी होती है, न बरसात की विभीषिका होती है। साम्य प्रकृति होती है। प्रकृति की समता, चित्त की समता और समरसता में सहायक होती है। जैसे हम होली में होलिका को जलाते हैं, ईश्वर-भक्त प्रह्लाद को गोद में बैठाकर जलाने के कारण उसकी भर्त्सना करते हैं, वैसे ही साधक को ईश्वरप्राप्ति में बाधक अपने अन्त:स्थ काम-क्रोध, लोभ-मोह, मद-मत्सरादि शत्रुओं को, दुर्गुणों को विचार द्वारा, भगवत्-प्रार्थना द्वारा जलाकर भस्म कर देना चाहिए और ईश्वर के सान्निध्य में साधक जीवन का सोत्साह शुभारम्भ करना चाहिए। हमारे इस नये उत्साह और शुद्धचित्त से की गई साधना से हमें ईश्वर के सच्चिदानन्द स्वरूप की, अस्ति-भाति-प्रिय स्वरूप की, भगवदानन्द की अनुभूति होगी।

होली सर्वधर्म, सर्ववर्ग, सर्वजन-समन्वय में समरसता और सौहार्द स्थापित करने की प्रतीक है। जैसे साधक परमात्म-दर्शन के बाद निरपेक्ष रूप से कालातीत और गुणातीत होकर विचरण और सबसे समान व्यवहार करता है, वैसे ही होली के दिन जन-समुदाय सारे विवाद, वैमनस्य, ईर्ष्या-द्वेष को भूलकर परस्पर प्रेम से गले मिलते हैं, यह सप्रेम सानन्द की अभिव्यक्ति उस चिन्मय परमानन्द की ही स्थूल अभिव्यक्ति है, जो इस महान होली के पर्व पर प्रकट होती है। भारतीय संस्कृति का यह पक्ष आध्यात्मिक ऐक्य के सिद्धान्त का प्रत्यक्ष व्यावहारकि रूप है। इस संस्कृति के स्वर्ण-स्तम्भ ने भारतीय संस्कृति की उदारता, समरसता, वैश्विक बन्धुता को संजीवित, संपोषित और सबल रखा है।

दूसरा स्वर्ण-स्तम्भ

चैत्र में रामनवमी पड़ती है। मैं रामनवमी को संस्कृति का दूसरा स्वर्णस्तम्भ मानता हूँ। क्योंकि इसी चैत्र मास के शुक्ल पक्ष की नवमी तिथि को मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान राम का जन्म पावन अयोध्या नगरी में राजा दशरथजी के यहाँ हुआ था। श्रीरामजन्म के सम्बन्ध में गोस्वामीजी रामचरितमानस में लिखते हैं –

जोग लगन ग्रह बार तिथि सकल भए अनुकूल।
चर अरु अचर हर्षजुत राम जनम सुखमूल।।
नौमी तिथि मधु मास पुनीता।
सुकल पच्छ अभिजित हरिप्रीता।।
मध्यदिवस अति सीत न घामा।
पावन काल लोक बिश्रामा।।
सीतल मंद सुरभि बह बाऊ।
हरषित सुर संतन मन चाऊ।।
बन कुसुमित गिरिगन मनिआरा।
स्रवहिं सकल सरिताऽमृतधारा।।१/१९०/१-४

भगवान श्रीराम सम्पूर्ण मानवता के आदर्श हैं। उनकी जन्मतिथि बड़े धूम-धाम से सम्पूर्ण भारत और विश्व के प्रवासी भारतीयों द्वारा मनाई जाती है। बासन्ती नवरात्र भी इसी मास में मनाया जाता है। मानो होली के उमंग, उच्छ्वास, शुद्धचित्तता और प्राकृतिक समता का उपयोग अपने अन्त:स्थ शक्ति के जागरण में संयुक्त करना है। भगवान श्रीराम के दिव्य स्वरूप की अनुभूति हेतु साधना और पवित्रता की शक्ति की आवश्यकता है। मानो यह बासन्ती नवरात्र उस शक्ति की आराधना है। इसमें प्रकटित अपार ऊर्जा को शक्ति-आराधना में लगाना है। नव संवत्सर का आरम्भ शक्ति की आराधना कर माँ दुर्गा की कृपाप्राप्ति से आरम्भ करना है। लौकिक-अलौकिक, जागतिक और आध्यात्मिक सभी कार्यों में सफलता हेतु संघर्ष की शक्ति और विवेक का प्रयोजन होता है। यह नव संवत्सर के आरम्भ में माँ की आराधना करना विमल बुद्धि, विवेक और शक्ति-अर्जन की प्रक्रिया है। रामनवमी के पर्व पर भगवान श्रीराम का आदर्शमय जीवन, उनके द्वारा आचरित माता-पिता-गुरु के प्रति अपार श्रद्धा और आज्ञा-पालन, भ्रातृप्रेम, प्रजाप्रेम, रावणादि राक्षसों के अत्याचार से ऋषि-मुनियों के रक्षणार्थ सब कुछ त्याग कर लोकमंगलार्थ वन-गमन आदि नैतिक मूल्यों को स्मरण करें, उन्हें आत्मसात् करें और नव-संवत्सर को सोल्लास आरम्भ करें। दैनिक जीवन में इनका उपयोग कर अपने जीवन को आनन्दोल्लसित करें। यही भारतवासियों को विरासत में मिली भारतीय संस्कृति और सभ्यता का अचल वरदान है। ○○○

निवेदिता की दृष्टि में स्वामी विवेकानन्द (१५)

संकलक : स्वामी विदेहात्मानन्द

निवेदिता ने इस कविता की पृष्ठभूमि के विषय में 'द मास्टर' ग्रन्थ में लिखा है – "अपनी कश्मीर यात्रा का उद्देश्य विफल हो जाने के बाद[१] अब 'भयंकर की उपासना' ही उनका एकमात्र भाव रह गया। रोग या पीड़ा हमेशा ही इस बात की याद दिला देती कि 'वे ही अंग हैं, वे ही पीड़ा हैं और वे ही पीड़ा देनेवाली भी हैं। काली! काली! काली!

उनके मस्तिष्क में विचारों की बाढ़ आयी हुई थी और उन्हें न लिखने तक उन्हें चैन नहीं मिलने वाला था। उसी दिन संध्या के समय जब हम लोग किसी स्थान का भ्रमण करके अपने बजरे में लौटीं, तो सुना कि वे आये थे और हम लोगों के लिये अपने हाथ से लिखी हुई 'काली द मदर' कविता रख गये हैं। प्रेरणा के अग्निदाह में जलते हुए उन्होंने यह कविता लिखी थी – इसे पूरा करने के बाद वे मूर्च्छित होकर फर्श पर गिर पड़े थे – यह बात हमने बाद में सुनी।

इस घटना के बाद स्वामीजी ने ३० सितम्बर को क्षीरभवानी की यात्रा की और वहाँ से ५ अक्तूबर को लौट आये।

जब वे क्षीरभवानी से लौटकर आये, उस समय की उनकी आध्यात्मिक भावावेग की बात हमें उद्धृत पत्र में मिली है, 'द मास्टर' ग्रन्थ में भी 'क्षीरभवानी' अध्याय प्राप्त होता है।

कुछ बातें, जो पत्र में नहीं हैं, 'द मास्टर' के इस अध्याय में हैं। यथा, स्वामीजी ने लौटते ही नि:शब्द रहते हुए गेंदे के फूलों की माला को एक-एक कर हम लोगों के मस्तक से छुलाकर आशीर्वाद दिया और अन्त में हममें से एक के हाथ में उसे सौंपते हुए वे बोले, 'मैंने इसे माँ को निवेदित किया था।' इसके बाद वे बैठ गये और मुस्कुराते हुए बोले, 'अब हरि ॐ नहीं, केवल माँ, माँ, माँ।' हम सभी मौन बैठे रहे। वह स्थान एक ऐसे परिवेश से आच्छन्न हो गया था कि यदि हम चाहते तो भी कुछ बोल नहीं पाते। इसके बाद वे फिर बोले, 'मेरा सारा देशप्रेम जा चुका है। सब कुछ जा चुका है। अब केवल माँ, माँ, माँ।'

थोड़ा ठहरकर, 'मुझसे बड़ी भूल हुई थी। माँ बोली, 'यदि अविश्वासी लोग मेरे मन्दिर में प्रविष्ट हो जायँ और मेरी मूर्ति को तोड़ डालें, तो इससे तुझे क्या! तू मेरी रक्षा करता है, या मैं तेरी रक्षा करती हूँ!' इसीलिये अब देशप्रेम नहीं। अब तो मैं एक शिशु मात्र हूँ।' ...

इसके बाद जब स्वामीजी मुण्डित मस्तक संन्यासी के चिरकालीन वेश में उपस्थित हुए, तब निवेदिता के कल्पना-नेत्रों के समक्ष क्षीरभवानी में स्वामीजी की तपस्या का रूप जाग्रत हो उठा, 'हम लोगों ने अपने कल्पना-नेत्रों से देखा – उनका प्रतिदिन का उपवास, कुण्ड में खीर तथा बादाम का भोग देकर पूजा; और सुबह एक ब्राह्मण पण्डित की छोटी-सी पुत्री का कुमारी उमा के रूप में पूजन।' स्वामीजी ने कहा था, 'अब मेरे मन में कोई इच्छा नहीं है – अब मैं फिर उसी गंगातट के मौनी नग्न परिव्राजक जीवन की ओर लौट जाना चाहता हूँ। अन्य कुछ नहीं, कुछ नहीं। 'स्वामीजी' मर चुके हैं, सदा के लिये जा चुके हैं। जगत् को शिक्षा देने का उत्तरदायित्व लेनेवाला मैं भला कौन हूँ – मैं कौन हूँ? यह सब बकवास और अहंकार है। माँ को मेरी जरूरत नहीं – मुझे ही उनकी जरूरत है। – जब ऐसा बोध जाग्रत होता है, तो कार्य माया मात्र ही रह जाता है।'

इसके बाद स्वामीजी विश्वामित्र के प्रति वशिष्ठ के क्षमादान का दृष्टान्त देकर बोले, 'प्रेम ही एकमात्र उपाय है। यदि कोई हम लोगों के विरुद्ध अन्याय करे, तो उससे प्रेम करो और तब तक प्रेम करो, जब तक कि उसका प्रतिरोध टूट न जाय।' निवेदिता ने लिखा है, 'जब स्वामीजी ये बातें कह रहे थे, तब उन शब्दों से जो विशाल-हृदयता प्रकट हुई थी, उसे अभिव्यक्त करने की क्षमता मेरी भाषा में नहीं है!'

उस टोली में से एक (निवेदिता) के मन में इच्छा हुई कि वे 'पल्लवसहित नाशपाती के फूलों' से स्वामीजी की पूजा करें। वे बोलीं, 'स्वामीजी, इनकी पूजा के लिये ही सृष्टि हुई

---

१. काश्मीर में एक मठ तथा संस्कृत कॉलेज की स्थापना हेतु उन्हें काश्मीर के महाराज ने आमंत्रित किया था। परन्तु उन्हें जमीन देने के प्रस्ताव पर अंग्रेज रेजीडेंट ने रोक लगा दी। इस विषय पर निवेदिता के राजनीतिक जीवन विषयक अध्याय में विशेष रूप से चर्चा होगी।

है, क्योंकि अब इनसे फल नहीं होंगे।' स्वामीजी ने उनकी ओर मुस्कुराते हुए देखा और परिवेश इतना गम्भीर हो उठा कि उस इच्छा को क्रियान्वित करने हेतु हिलना तक सम्भव नहीं हो सका।

निवेदिता ने स्वामीजी की विदाई का वर्णन करते हुए लिखा है –

'वे चले गये। हम सभी लोग – नौकर, मल्लाह, मित्र तथा शिष्य, पिता-माता, पुत्र-कन्या – उनके साथ सड़क पर खड़े ताँगे तक उन्हें विदा करने गये। एक छोटी-सी मासूम मूर्ति, बड़े मल्लाह की चार साल की कन्या, जिसका स्वामीजी के प्रति स्नेह अनेक दिनों से सबका ध्यान आकर्षित कर रहा था, उनकी यात्रा के लिये अपने काले सिर पर फलों की टोकरी लिये हुए दृढ़ कदमों से उनके साथ-साथ चल रही थी; और जब उनकी गाड़ी जाने लगी, तो मुस्कुराते हुए उन्हें विदा कर रही थी। यद्यपि हमारी वेदना उस बालिका से कम नहीं थी, परन्तु वयस्क होने के कारण – उस शिशु के समान नि:स्वार्थता के अभाव में अपने जटिल विचारों तथा अनुभूतियों के साथ – नहीं जानती थीं कि हम दुबारा कब उनका चेहरा देख सकेंगी, तथापि यह अनुभव नहीं कर सकीं कि उस दिन हम जिन क्षणों को जी रही थीं, उसी के ज्योतिर्मय आलोक में हमारा सारा भावी जीवन बीतने वाला है।

१८९८ ई. के दौरान हुई अपनी भावुकतापूर्ण अनुभूतियों का निवेदिता ने अपने 'भ्रमण' ग्रन्थ में, जिस भाषा में वर्णन किया है, वह ऊपरी तौर से तो गद्य, परन्तु वस्तुत: एक कविता थी – महापुरुष सूक्त। मुक्त गद्यछन्द में उसका अनूदित रूप इस प्रकार है –

इस वर्ष के दिन कितने सुन्दर रूप से बीते हैं!
इस दौरान आदर्श यथार्थ में परिणत हुए हैं।
पहले तो बेलूड़ के गंगातट पर स्थित
हमारी कुटिया में;
फिर हिमालय के नैनीताल व अल्मोड़ा में और
उसके बाद कश्मीर में इधर-उधर भ्रमण करते हुए –
सर्वत्र ही ऐसे अवसर आये
जो कभी भुलाये नहीं जा सकते,
ऐसी वाणी सुनने को मिली,
जो सदा-सर्वदा हमारे जीवन में प्रतिध्वनित होती रहेगी
और कम-से-कम एक बार
एक दिव्य दर्शन की झलक भी मिली।
यह सब कुछ मानो एक लीला थी।
हमने एक ऐसा प्रेम देखा, जो छोटे-से-छोटे तथा
महा अज्ञानी के साथ भी मिलकर एक हो जाता है।
और उनकी दृष्टि से तब जगत् को देखकर
उसमें कुछ भी निन्दनीय नहीं पाया;
एक विराट् प्रतिभा की विशाल मौजों पर
हमने हँसी-ठिठोली की है,
वीरता की उष्णता से हम गर्म हो उठे हैं;
और भगवान के शिशु रूप में आगमन पर
मानो हम उपस्थित रहे हैं।
परन्तु इन सबके दौरान
किसी बड़ी गम्भीरता या कठोरता का आलम न था।
पीड़ा हम सबके पास आयी,
शोक के अवसर आये और चले गये।
परन्तु वे दु:ख भी
स्वर्णिम ज्योति में परिवर्तित होकर दमकते रहे,
उनमें दाहकता न थी।
क्षमता होती तो मैं उन यात्राओं का वर्णन करती।
आज भी जब मैं लिखने बैठी हूँ,
तो बारामुला के प्रस्फुटित आइरिस-पुष्पों,
इस्लामाबाद के पोपलर (पहाड़ी पीपल) वृक्षों
के नीचे धान के नये पौधों,
हिमालय के नक्षत्रालोकित दृश्यों और
दिल्ली तथा ताज की राजकीय सुन्दरता को
अपने नेत्रों के सामने स्पष्ट देख पा रही हूँ।
इन यादगारों को लिख रखने की साध होती है।
परन्तु यह प्रयास व्यर्थ से भी व्यर्थतर होगा।
तथापि वे शब्दों में नहीं, बल्कि
स्मृति के प्रकाश में चिरकाल तक सुरक्षित रहेंगी और
उनके साथ ही वे कोमल
तथा मधुर-स्वभाव के लोग भी रह जायेंगे,
जिन्होंने हमारे इस जीवन के आनन्द में
और भी वृद्धि की है।
जिस प्रकार की मन:स्थिति में
नवीन धर्ममतों का जन्म होता है और
जो लोग इनके अनुप्रेरक बनते हैं –
इस विषय में भी कुछ-कुछ सीखने को मिला।
क्योंकि हम लोगों को एक ऐसे व्यक्ति का संग मिला,
जो सभी लोगों को अपनी ओर खींच लेते थे,
सबकी सुनते थे, सबसे संवेदना रखते थे और
किसी को भी अस्वीकार नहीं करते थे।
हमें देखने को मिली है एक ऐसी विनम्रता,
जो समस्त ओछेपन को दूर कर सकती थी;
ऐसा त्याग जो अन्याय के प्रति प्रचण्ड धिक्कार तथा
पीड़ित के प्रति करुणा से अभिभूत हो

जाता था;
ऐसा प्रेम जो उत्पीड़न तथा मृत्यु के चरणों में भी
आशीर्वाद की वर्षा कर सकता है।
हम लोग उस महिला (मेरी मेगडेलीन) के साथ जुड़े हैं,
जिसने अपने आँसुओं से प्रभु के चरण पखारकर
अपने सिर के केशों से उन्हें पोंछा है।
हमें ऐसे अवसरों का नहीं, अपितु
उनकी भावविह्वल आत्मविस्मृति का अभाव रहा है।
दिवंगत सम्राटों के उद्यान में एक वृक्ष के नीचे बैठकर
हमें एक ऐसी अनुभूति हुई है,
मानो जगत् की सारी उत्तम तथा उत्कृष्ट चीजें
महान् आत्मा के देवालय में आकर
स्वयं को निवेदित कर रही हों।
गिरजाघरों की अलंकृत खिड़कियाँ,
महाराजाओं के रत्नखचित सिंहासन,
महानायकों की विजय-पताकाएँ,
पुरोहितों की वेशभूषा, नगरों की साज-सज्जा
और दम्भियों के सैरगाह –
सभी हमारे दृष्टिपटल पर आये और परित्यक्त हो गये।
हमने उन्हें भिक्षुक की वेशभूषा में भी देखा,
जिसमें वे विदेशियों द्वारा तिरस्कृत
तथा स्वदेशियों द्वारा पूजित हुए थे;
और इसीलिए श्रम-अर्जित रोटी, कुटीरों का आश्रय
तथा खेतों के बीच से होकर
जानेवाला आम रास्ता ही
इस जीवन की पृष्ठभूमि के रूप में
ठीक ठीक शोभायमान होता है।
स्वदेशवासियों में विद्वानों
तथा राष्ट्रप्रेमियों के समान ही
निरक्षर जनता भी उनसे प्रेम करती थी।
उनके नाव के मल्लाह उनकी अनुपस्थिति में
उनके आने की राह देखते रहते थे और
घर के सेवक उनकी सेवा करने को
अतिथियों के साथ उलझ पड़ते थे।
और यह सब कुछ सर्वदा
मानो एक खेल के आवरण से ढँका रहता था।
'वे लोग भगवान के साथ खेल रहे थे'
और सहजवृत्ति से वे इस बात को जानते भी थे।
जिन लोगों ने ऐसे क्षण देखे हैं,
उनका जीवन और भी समृद्ध तथा मधुर हो उठा है
और लम्बी रातों के दौरान उन्हें लगता है,
मानो हवा भी ताड़ के वृक्षों से होकर पुकार रही है –
'महादेव! महादेव! महादेव!'

(क्रमशः)

प्रेरक लघुकथा

सरल सादी सद्गुणी सफल सद्गृहिणी होय

डॉ. शरत् चन्द्र पेंढारकर

तब लालबहादुर शास्त्री जी उत्तर प्रदेश के गृहमंत्री थे। उनका जीवन अत्यन्त सरल, सादगीभरा तथा सात्त्विकता पूर्ण था। उनकी पत्नी ललिता देवी का व्यक्तिगत जीवन पति के समान मितव्ययितापूर्ण था। एक महिला मंडल की अध्यक्षा किसी कार्यक्रम की अध्यक्षता करने का निमंत्रण देने उनके घर गई। उसके पति उच्च पदस्थ अधिकारी थे। वह कीमती वस्त्रों और गहनों से लदी थी। बाहर कोई नौकर-चाकर या सिपाही न दिखाई देने पर वह सीधे घर में घुस गई। उस समय ललिता देवी हाथ की चक्की चला रही थीं। महिला को देख वे खड़ी हो गईं। उस समय उनके हाथों में आटा लगा था तथा माथे पर पसीने की बूँदें जमा हो गई थीं। तथापि उन्होंने हँसते हुए महिला को कुर्सी पर विराजमान होने को कहा। वह ललिता देवी को इस हालत में देखकर चकित रह गई। वह बोली, "आप तो गृहमंत्राणी हैं। नौकरों के काम खुद कर रही हैं। लोगों को अगर इसका पता चलेगा और उन्होंने शास्त्रीजी से इसका उल्लेख किया, तो क्या उन्हें नीचा देखना नहीं पड़ेगा?"

ललिता देवी ने विनम्रता से जवाब दिया, "मंत्री मेरे पति हैं, मैं नहीं। मैं तो गृहिणी हूँ और घर का काम खुद करना हर गृहिणी का कर्तव्य है। मेरे पति को सादगी पसन्द हैं और मुझसे भी इसकी अपेक्षा करते हैं। वे स्वयं ही मेरे कामों में समय मिलने पर हाथ बँटाते हैं। फिर भला मुझे घर का काम करते देख लज्जा का अनुभव क्यों करेंगे? आप शायद जानती नहीं कि मंत्री का पद अस्थायी होता है। इस पद के जाने पर गृहिणी को सादगीपूर्ण जीवन बिताना पड़ता है।" उच्च सोसायटी वाली स्त्रियों के बीच सादे वस्त्रों वाली महिला का कार्यक्रम की अध्यक्षता करना आधुनिकता के रंग में रंगी उस महिला को उचित न लगा। प्रणाम करके वह चुपचाप लौट गई।

भारतीय संस्कृति में सह-धर्माचरण का महत्त्व है। इसी कारण 'गृहिणी' धर्मपत्नी या सह-धर्मचारिणी कहलाती है। पति पत्नी से सादगी, शालीनता, सज्जनता और सहृदयपूर्ण व्यवहार की अपेक्षा करता है। सादगी चरित्र की मधुरिमा है। 'सादा जीवन उच्च विचार' भारतीय संस्कृति का मूलमंत्र है। ○○○
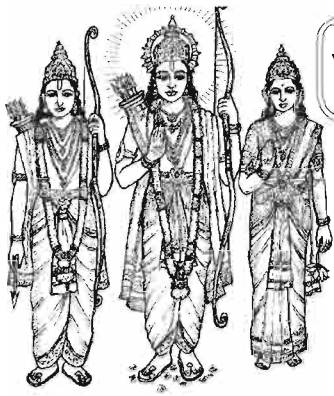
यथार्थ शरणागति का स्वरूप (४/१)

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(पं रामकिंकर महाराज श्रीरामचरितमानस के अप्रतिम विलक्षण व्याख्याकार थे। रामचरितमानस में रस है, इसे सभी जानते हैं और कहते हैं, किन्तु रामचरितमानस में रहस्य है, इसके उद्घाटक 'युगतुलसी' की उपाधि से विभूषित श्रीरामकिंकर जी महाराज थे। उन्होंने यह प्रवचन रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के पावन प्रांगण में १९९२ में विवेकानन्द जयन्ती के उपलक्ष्य में दिया था। 'विवेक-ज्योति' हेतु इसका टेप से अनुलिखन स्वर्गीय श्री राजेन्द्र तिवारी जी और सम्पादन स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने किया है। – सं.)

कथा के प्रारम्भ में आज जो विलम्ब हुआ, उसके लिये मैं आप सबसे क्षमा याचना करता हूँ। पर विलम्ब का एक आनन्ददायक अनुभव, बड़ा सुखद और प्रेरक था। जब मैं यहाँ आया, यही सम्भावना हो सकती थी और यह स्वाभाविक भी होता कि स्वामीजी कहते, विलम्ब हो गया है, शीघ्रता से चलें। इसके स्थान पर जो वाक्य उन्होंने कहा, वह तो संत ही कह सकते हैं, संसारी व्यक्ति के लिये वह सम्भव नहीं है। उन्होंने कहा कि कोई शीघ्रता नहीं है, विश्राम कर लीजिये, तब आइये। जिस संत-लक्षण की चर्चा मानस में है, यह भावना और वाणी तो संत के हृदय में ही हो सकती है। चलिए, विलम्ब से एक आनन्ददायक अनुभव मुझे तो मिला ही, पर मुझे विश्वास है कि आप लोगों को भी सुनकर इस भाव की अनुभूति हुई होगी। अभी श्रद्धेय स्वामीजी महाराज ने दो सूत्रों के माध्यम से कल की कथा का सार आपके समक्ष रखा।

हम सभी जीव विभीषण ही हैं। जो परिस्थिति विभीषण के समक्ष है, वही हम सबके जीवन में दिखाई देती है। विशेष रूप से उन व्यक्तियों के जीवन में, जिनके अन्त:करण में भगवान की भक्ति का संस्कार है। जो विषयों में रचे-बसे हैं, जिनके जीवन का कोई दूसरा लक्ष्य नहीं है, वह व्यक्ति तो लंका में निवास करता हुआ, लंका का ही जीवन व्यतीत करता है। उसके जीवन में कोई ग्लानि नहीं होती, कोई पश्चात्ताप नहीं होता। किन्तु समस्या तो वस्तुत: उस व्यक्ति के सामने ही होती है, जिसका विवेक चैतन्य है और जिसे यह ज्ञात है कि जीवन का चरम लक्ष्य ईश्वर को पाना है। पर वह अपने आप को कुछ ऐसी परिस्थितियों में घिरा हुआ पाता है कि उससे मुक्त नहीं कर पाता। विभीषण की स्थिति भी उसी प्रकार की है। ऐसे अनेक साधक-प्रकृति के लोग हैं, जिनके समक्ष यह समस्या आती है।

ये समस्यायें अनेक रूपों में विभीषणजी के अन्त:करण में उठ रही थीं। उनमें एक मिले-जुले भाव थे। एक भाव तो उनमें यह था कि धर्म के प्रति उनके मन में धारणा थी कि बड़े भाई के प्रति छोटे भाई का क्या कर्तव्य है। वह भी ऐसी स्थिति में जब उनका बड़ा भाई स्वयं अत्यन्त उदार हो। ऐसा लगता है कि जैसे संसार में असहिष्णु दिखाई देने वाला रावण विभीषण के लिये सहिष्णुता की मूर्ति बन गया है। रावण के महल के बगल में ही विभीषण का भवन है। विभीषण के भवन के पास हरि मन्दिर है। ऐसा प्रतीत होता ही है कि रावण कितना उदार है, कितना सहिष्णु है कि वह स्वयं भले ही भगवान हरि का विरोधी है, श्रीराम का विरोधी है, लेकिन वह अपने घर में ही अपने भाई को पूजा की सुविधा दे देता है, आपत्ति नहीं करता है, तो किसी के भी मन पर यही छाप पड़ेगी कि वह व्यक्ति उदार है, सहिष्णु है। एक तो मानो कर्तव्य सम्बन्धी धारणा और दूसरी ओर रावण का गुण दर्शन। रावण में भी अनेक गुण हैं, ऐसा दर्शन विभीषण को होता है। फिर मन में एक दुविधा भी है, एक आशंका भी है। इसका आपने कभी-कभी अनुभव किया होगा, जैसे कोई व्यक्ति, जो हमारा अत्यन्त प्रिय हो, आदरणीय हो और हम उनके आते ही उनसे मिलना चाहें और कहीं किसी कारण से समय टलता जाय, तो एक प्रकार का संकोच और भी हृदय में जुड़ जाता है कि अब कैसे जायँ, कहीं जाने पर वे यह न कह दें कि तुम अब तक क्यों नहीं आए, कहीं उलाहना न दें। ये सारे संस्कार साधक के जीवन में भी होते हैं। एक ओर उसके सामने वह धर्म होता है, जिसमें सांसारिक कर्तव्यों के नाम पर स्वार्थ की पूर्ति को जीवन का लक्ष्य मान लिया जाता है। दूसरी ओर एक बड़ा विलक्षण लक्ष्य है। रावण में गुण दिखाई देना, इससे बढ़कर साधक के लिये कोई अकल्याणकारी वस्तु हो ही नहीं सकती।

कानपुर में मानस संगम के नाम से एक आयोजन प्रतिवर्ष होता है। प्रवचन की नौ दिवसीय परम्परा के बाद अंतिम दिन विविध प्रकार के व्यक्ति उसमें एकत्रित होते हैं। उसमें

प्रयाग उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश आए हुए थे। वे स्वभाव से तो न्यायाधीश थे। केशवदास एक कवि हुए हैं, जिनका वह दोहा मैंने कल कहा था। वैसे उन्होंने रामचन्द्रिका की रचना की है और उसमें भगवान राम के चरित्र का वर्णन किया गया है। तो न्यायाधीश महोदय ने एक वाक्य कहा, जो वाक्य बड़ा सांकेतिक था। रामचन्द्रिका में केशवदास की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने रावण के प्रति भी न्याय किया है। रावण के सद्‌गुणों का भी वर्णन करने में उन्होंने संकोच नहीं किया। मेरे वे परिचित स्नेही हैं। उनका वस्तुत: छिपा हुआ अभिप्राय यह था, जो बहुधा चर्चा का विषय रहता है कि गोस्वामीजी ने रावण के प्रति न्याय नहीं किया। इसका अर्थ वे यह मानते हैं। न्यायाधीश महोदय और अनेक समालोचक महोदय भी यही कहते हैं कि उन्होंने सर्वदा रावण की निन्दा-ही-निन्दा की, जबकि वह इतने विलक्षण सद्‌गुणों से युक्त था, किन्तु उसके सद्‌गुणों का वर्णन नहीं किया। मैंने उनसे विनम्रतापूर्वक जो बात कही थी और मुझे विश्वास है कि गोस्वामीजी की दृष्टि पर जब आप विचार करेंगे, तो आप समझ सकेंगे।

यह मान लिया गया कि रावण के प्रति न्याय के लिये हम रावण के गुणों की प्रशंसा करें। किन्तु वस्तुत: गोस्वामीजी के सामने एक महानतम सूत्र था। वह यह है कि वे कोई न्यायाधीश के आसन पर बैठकर तटस्थ भाव से कोई रचना कर रहे हों, ऐसी भावना उनकी नहीं थी। उन्होंने कभी यह दावा नहीं किया कि वे निष्पक्ष हैं। बड़ी सीधी-सी स्वीकृति है। वे स्वीकार करते हैं कि भक्त तो पक्षपाती होता ही है। भक्तों ने तो सर्वदा यह स्वीकार किया कि वे पक्षपाती हैं, उनके हृदय में पक्षपात है। उन्होंने भी यही कहा कि उनकी दृष्टि में रावण केवल एक व्यक्ति नहीं है, वे उसको साधक की दृष्टि से देखते हैं। जब हमें दुर्गुणों में भी कोई सद्‌गुण दिखाई देने लगेगा, तो हम दुर्गुणों को नहीं छोड़ पायेंगे। मान लीजिए, किसी व्यक्ति को क्रोध आता है। क्रोध दुर्गुण है, पर वह उसकी ऐसी कोई उत्कृष्ट व्याख्या करके उसको किसी-न-किसी ऐसी विशेषता से जोड़ दे, तो वह दोषमुक्त नहीं हो सकेगा। स्वाभाविक ही है, जब भी दोष छूटेगा, तो दोष में दोषबुद्धि होने पर ही छूटेगा। दोष में अगर गुणबुद्धि सम्मिलित हो गई, तो व्यक्ति दोष से मुक्त नहीं हो सकता। आपने देखा होगा, ये जो दस्यु के रूप में डाका डालते हैं, वे बहुत वर्षों तक कभी पकड़ में नहीं आते हैं। उसके पीछे रहस्य यह है कि एक वर्ग ऐसा होता है, जो यह कहकर डाकुओं का गुणानुवाद करता है कि भई, वह डाकू तो बड़ा उदार है। अगर उसने एक-दो कन्याओं का विवाह करा दिया है, तो कहते हैं कि वह तो गरीबों की कन्याओं का विवाह करा देता है। इस तरह से एक-दो गुण उस डाकू पर आरोपित कर दिये जायेंगे, तो स्वाभाविक ही लोगों की सहानुभूति उसके साथ होगी। फिर मान लिया गया कि उसने मेरे साथ बुराई नहीं की है, तो हमारे लिये भला है। तो परिणाम होता है कि जब उसको लोगों की सहानुभूति मिलती है, तो वह उसके लिये रक्षा-कवच बन जाया करता है। दुर्गुण तो व्यक्ति के जीवन में तभी नष्ट हो सकते हैं, जब हम दुर्गुण में गुण खोजने की चेष्टा न करें।

देवर्षि नारद ने काम के आक्रमण के बाद जब काम को क्षमा कर दिया, तो काम तो क्षमा माँगकर चला गया, पर देवर्षि नारद अपनी तुलना भगवान शंकर से करने लगे – भगवान शंकर भी कामारि हैं, काम के विजेता हैं और मैं भी विजेता हूँ, पर उनमें और मुझमें बहुत बड़ा अन्तर है। क्या? उन्हें क्रोध आ गया और उन्होंने काम को दण्ड दे दिया, किन्तु मैंने काम को क्षमा कर दिया। काम पर क्रोध नहीं आया और शंकर जी को आ गया, इसका अर्थ है कि शंकरजी न्यून हैं। पर व्यंग्य क्या हुआ? क्रोध तो नारदजी को आया, पर किस पर आया? राम पर क्रोध आ गया। जो रावण पर क्रोध नहीं करेगा, वह राम पर क्रोध करेगा। अब वे बड़े उदार बन गये कि हम तो क्षमा कर देते हैं। बुराइयों को क्षमा कर देना और वह क्षमा भी ऐसी कि उसमें कोई विशेषता जोड़कर, कि काम आक्रमण करने के लिये आया था, पर चरणों को पकड़कर क्षमा माँगने लगा। यह साधक का मनोभाव नहीं है।

प्रत्येक व्यक्ति के अन्त:करण में किसी-न-किसी प्रकार का कुछ-न-कुछ पक्षपात तो होता ही है, पर गोस्वामीजी का मुख्य तात्पर्य यह है कि जो संकेत विभीषण के जीवन में है, जीव के जीवन में भी यही है कि जब रावण में उसको विशेषता दिखाई देती है, तो सही रूप में रावण को छोड़कर राम के पास की प्रेरणा तो तभी हो सकती है, जब उसको लगे कि रावण पूरी तरह से त्याज्य है, छोड़ने योग्य है। गोस्वामीजी का जो दृष्टिकोण है, वह साधनापरक है, भक्तिपरक है। उनका अभिप्राय यह है कि कृपा करके विशेष रूप से अपने जीवन के दुर्गुणों में सद्‌गुण ढूँढ़ने की चेष्टा कभी न करें। रावण के गुणों का वर्णन नहीं करने का उनका उद्देश्य यही है।

इस सन्दर्भ में आप श्रीमद्‌भागवत की उस घटना पर दृष्टि डालिये। कंस की बहन देवकी का वसुदेव से विवाह हुआ। कंस उन्हें रथ पर बैठाकर स्वयं रथ हाँकते हुए उन्हें सम्मानपूर्वक पहुँचाने जा रहा था। देखनेवाले चकित थे ! कह रहे थे, धन्य है कंस, राजा होते हुए भी देवकी का रथ हाँक रहा है। सचमुच इसके हृदय में अपनी बहन के प्रति, अपने जीजा के प्रति कितना समादर है ! कितना निरभिमानी है ! स्वयं सारथि के स्थान पर बैठकर रथ चला रहा है। क्या आप जानते हैं, उसके बाद कितनी अद्‌भुत घटना हुई? अचानक आकाशवाणी हुई, अरे मूर्ख, तू जिसका रथ चला रहा है, उसके गर्भ से उत्पन्न होनेवाले आठवें पुत्र के हाथों तेरी मृत्यु होगी। अब सोचिए, इस आकाशवाणी की आवश्यकता ही क्या थी? ठीक है, आठवें पुत्र के रूप में भगवान अवतार लेते और कंस का वध कर देते। यह सूचना देनी आवश्यक थी क्या? पर उसका अर्थ क्या था? देवकी और वसुदेव भी गद्‌गद्‌ हो रहे थे। देवकी गद्‌गद्‌ हो रही थी कि मेरा भाई मुझसे कितना प्रेम करता है ! मेरा रथ हाँक रहा है ! आकाशवाणी का अर्थ क्या है? भगवान बड़े कृपालु हैं, उनको जीव की इस दशा पर दया आ गई। सोचने लगे कि जिसके रथ का सारथ्य मुझे करना चाहिये था, उसका सारथि कंस बन गया –

ईस भजनु सारथी सुजाना। ६/७९/७

देवकी गद्‌गद्‌ हो रही हैं कि यह मेरा सौभाग्य है। याद रखिए, कंस जीवन में सारथि बन जाय, तो यह प्रसन्न होने की बात नहीं है। यह तो दुखी होने की बात है। वस्तुत: कंस तो देहाभिमान है और भगवान राम जब धर्मरथ का वर्णन करते हैं, तो कहते हैं, 'ईस भजन सारथी सुजाना'।

संकेत यह है कि सद्‌गुणों के होते हुए भी अगर उसकी बागडोर अभिमान के ही हाथ में है, तो व्यक्ति का पतन और विनाश अवश्यम्भावी है। मानो आकाशवाणी का उद्देश्य था कि कंस की वास्तविकता को ये दोनों वसुदेव और देवकी पहचान लें। दुर्गुण को दुर्गुण के रूप में जान लें, इसलिये भगवान ने आकाशवाणी के रूप में उस दृश्य को प्रस्तुत कर दिया। वह तत्काल दिखाई भी पड़ा। इतना उदार, इतना विनम्र दिखाई देनेवाला कंस अगले ही क्षण क्या करता है? कौन घोड़े का लगाम पकड़े, वह रथ से कूद पड़ता है और देवकी का बाल पकड़कर, नीचे घसीटकर, तलवार निकाल कर उसे मारने के लिये प्रस्तुत हो जाता है। मानो यह सत्य कि बुरा व्यक्ति बुराई करे, तो चिन्तित होइए, पर बुरा व्यक्ति कुछ अच्छा करे, तो और अधिक सावधान रहिए।

रामायण में भी बहुत बढ़िया बात आती है। मारीच रावण का मामा है। रावण जब मारीच के पास आया, तो उसने मामा को प्रणाम किया। पार्वतीजी को लगा कि रावण सभ्य तो है ही, विनम्र भी है। वह सारे विश्व का विजेता है और यह मारीच तो उसके सामने एक साधारण-सा व्यक्ति है, पर रावण ने उसे प्रणाम किया। भगवान शंकर ने देखा कि श्रोता तो गड़बड़ा रहा है, तो तुरन्त उन्होंने कहा कि पार्वती, याद रखो, यह रावण का झुकना बहुत गड़बड़ है। गोस्वामीजी ने जो चौपाई लिखी, आपने पढ़ी होगी –

नवनि नीच कै अति दुखदाई।
जिमि अंकुस धनु उरग बिलाई। ३/२३/७

नीच न नवै तो दुखदाई और नवै तो अति दुखदाई। नीच अगर झुक जाये, तो प्रसन्न मत होइए, सावधान हो जाइए, कोई बड़ी नीचता, कोई महादुख देने वाला है। दृष्टान्त क्या दिया? बोले, दुष्ट की दुष्टता को एक उपमा के द्वारा नहीं समझाया जा सकता। जैसे अंकुश हाथी के कान पर ही सवार है। तब उसका शीर्ष भाग, जो नुकीला होता है, वह ऊपर की ओर होता है। और जब महावत उसे हाथ में लेता है, तब उसे उलटा पकड़ता है, हाथी के मस्तक पर प्रहार करने के लिये उसके शीर्ष भाग को नीचे की ओर झुकाता है। अंकुश का झुकना मानो प्रहार के लिये है। वह अंकुश जो मस्तक की ओर झुक रहा है, वह आशीर्वाद देने थोड़े ही जा रहा है, वह तो मस्तक पर प्रहार करने जा रहा है। धनुष पर जब बाण चढ़ेगा, तो प्रत्यंचा खींची जायेगी और धनुष झुक जायगा। उरग, सर्प का भी स्वभाव है, जब वह किसी व्यक्ति को देखता है, प्रहार करना चाहता है, तो उठे हुए फन को नीचे की ओर झुकाकर प्रहार करता है। बिल्ली का भी यही स्वभाव है। चार उपमा देने का अर्थ यही था कि अंकुश पास वाले पर प्रहार करता है और धनुष दूर वाले पर। दुष्ट पास वाले को भी कष्ट देता है और दूर वाले को भी कष्ट देता है। सर्प और बिल्ली में अन्तर यह है कि सर्प बिना कारण काटता है और बिल्ली स्वार्थ के कारण चूहे को पकड़ती है। माने जो बिन कारण से भी कष्ट दे, किसी कारण से भी कष्ट दे, पास रहकर भी कष्ट दे, दूर रहकर भी कष्ट दे, वह दुष्ट है। जब वह प्रणाम करे, तो समझ जाना चाहिये कि यह भूँक रहा है, अब आक्रमण करने वाला है। **(क्रमशः)**

विद्यार्थी पञ्चलक्षणम्

स्वामी ओजोमयानन्द

रामकृष्ण मठ, बेलूड़ मठ

सुभाषित की एक सूक्ति हमें सफल विद्यार्थी जीवन के गठन की प्रेरणा देते हुये कहती है –

काकचेष्टा बकोध्यानं श्वाननिद्रा तथैव च।

अल्पहारी, गृहत्यागी, विद्यार्थी पञ्च लक्षणम्।।

काक चेष्टा – एक कौआ था। उसे बहुत प्यास लगी थी। वह पानी की खोज में दूर-दूर तक भटक रहा था। तभी उसकी दृष्टि एक घड़े पर पड़ी, जो आधा भरा हुआ था। कौआ घड़े तक पहुँचकर भी पानी पीने में सक्षम न हो पा रहा था। तब वह पानी तक पहुँचने का उपाय सोचने लगा। उसे एक उपाय मिल ही गया। वह उड़-उड़कर कहीं से कंकड़ लेकर आता और उस घड़े में डाल देता। ऐसा करते-करते घड़े से पानी का स्तर ऊपर आ गया और कौए ने पानी पीकर अपनी प्यास बुझाई। कौए की इस चेष्टा से, प्रवृत्ति से हम अपना विद्यार्थी जीवन गढ़ सकते हैं। बचपन में यह कहानी संभवत: हम सबने ही सुनी होगी, पर इस छोटी-सी कहानी में ही विद्यार्थी जीवन का गूढ़ अर्थ छिपा हुआ है कि हम निरन्तर चेष्टा करते रहें। जिस प्रकार कौआ एक-एक कंकड़ निरन्तर उस घड़े में तब तक डालता रहा, जब तक कि वह अपने लक्ष्य में सफल नहीं हो गया। उसी प्रकार विद्यार्थियों को भी निरन्तर चेष्टा करनी चाहिए। यदि वह कौआ कुछ कंकड़ डालकर ही अपनी असफलता स्वीकार कर लेता, तो वह कभी भी अपने लक्ष्य की प्राप्ति नहीं कर पाता, ठीक उसी प्रकार हमें भी अपना प्रयास निरन्तर जारी रखना होगा। स्वामी विवेकानन्द जी कहते हैं, ''प्रारम्भ में सफलता न भी मिले, तो कोई हानि नहीं, यह असफलता तो बिल्कुल स्वाभाविक है, यह मानव-जीवन का सौन्दर्य है। इन असफलताओं के बिना जीवन क्या होता? यदि जीवन में इस असफलता को जय करने की चेष्टा न रहती, तो जीवन धारण करने का कोई प्रयोजन ही न रहता। उसे न करने पर जीवन का कवित्व कहाँ रहता? यह असफलता, यह भूल रहने से क्या हानि है? मैंने गाय को कभी झूठ बोलते नहीं सुना, पर वह सदा गाय ही रहती है, मनुष्य कभी नहीं हो जाती। अत: यदि बार-बार असफल हो जाओ, तो भी क्या? कोई हानि नहीं, हजार बार इस आदर्श को हृदय में धारण करो और यदि हजार बार भी असफल हो जाओ, तो एक बार फिर प्रयत्न करो।[१] वस्तुत: बचपन में कुछ जानने की चेष्टा स्वाभाविक होती है कि यह क्या है, इससे क्या होता है, आदि। परन्तु बड़े होने के बाद यह अभ्यास समाप्त हो जाता है। यदि इस अभ्यास को निरन्तर बनाये रखा जा सके, तो वह दिन दूर नहीं, जब हमारे आसपास बहुत से वैज्ञानिक हुआ करेंगे। उदाहरणार्थ न्यूटन को ही लें, वे एक सेब को नीचे गिरता हुआ देख यह सोचने लगे कि सेब नीचे ही क्यों गिरा, वह ऊपर क्यों नहीं गया और इस पर गहन विचार करते हुए, अपनी चेष्टा के फलस्वरूप उन्होंने गुरुत्वाकर्षण की खोज की। हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि प्रयासों के पर होते हैं, वे हमें ऊँचाईयों तक ले जाने में सक्षम होंगे। अत: असफलता के बाद भी चेष्टाएँ होनी चाहिए तथा कुछ जानने की चेष्टाएँ भी होनी चाहिए, कुछ वैसी ही जो हमारी सफलता का मंत्र हों।

बकोध्यानम् – महाभारत में द्रौपदी-स्वयंवर में मछली के नेत्र का भेदन करना था। क्योंकि मछली की गति अत्यन्त चंचल होती है, अत: उसे पकड़ पाना अत्यन्त कठिन होता है, इस प्रकार वहाँ अर्जुन के एकाग्रता की परीक्षा होती है। ऐसी चंचल गति वाली मछलियों को भी बगुला अपनी एकाग्रता के बल पर पकड़ लेता है। बगुला पानी में एक ही टांग पर खड़ा रहकर अपनी एकाग्रता अपने लक्ष्य पर निश्चित किए रहता है और लक्ष्य के आते ही अपनी पूरी एकाग्रता से लक्ष्य पर लपक पड़ता है। बगुले का यह गुण विद्यार्थियों के लिए एकाग्रता का अनुपम उदाहरण है। यदि विद्यार्थी भी अपने लक्ष्य पर इसी प्रकार एकाग्र हों, तो वे सफलता के शिखर पर पहुँच सकते हैं। वास्तव में शिक्षा तथ्यों का संकलन कभी नहीं होती, बल्कि उसका मापदण्ड एकाग्रता ही होती है। इस सन्दर्भ में स्वामी विवेकानन्द जी के विचार इस प्रकार हैं, ''मेरे विचार से तो शिक्षा का सार तथ्यों का संकलन नहीं, बल्कि मन की एकाग्रता प्राप्त करना है। यदि मुझे फिर से अपनी शिक्षा आरम्भ करनी हो और इसमें मेरा वश चले, तो मैं तथ्यों का अध्ययन कदापि न करूँ। मैं मन की एकाग्रता और अनासक्ति की क्षमता अर्जित करूँगा और उपकरण के पूरी तौर से तैयार हो जाने पर उससे अपनी इच्छानुसार तथ्यों का संकलन करूँगा। बच्चों

१ विवेकानन्द साहित्य, २/१५६

में मन की एकाग्रता तथा अनासक्ति के सामर्थ्य एक साथ विकसित होने चाहिए।[२]

कई बार विद्यार्थी पढ़ने तो बैठते हैं, पर पुस्तक के एक ही पृष्ठ का पन्ना दीर्घ समय तक खुला रहता है, कुछ समझ में नहीं आता, क्योंकि उनका मन कहीं और था। एक एकाग्रता विहीन विद्यार्थी में स्मृति का अभाव होना स्वाभाविक है, जिसके कारण विषय-वस्तु को भली-भाँति समझ पाना उसके लिये दुष्कर हो जाता है और उसके फलस्वरूप उसमें विषय-वस्तु के ज्ञान का अभाव होता है। ज्ञान के अभाव में वह असफल हो जायेगा।

क्या विद्यार्थी अपनी एकाग्रता बढ़ा सकते हैं? आइए हम एकाग्रता बढ़ाने के सन्दर्भ में कुछ अचूक उपायों का संक्षेप में विचार करें। सर्वप्रथम तो हमारा मन जितना शुद्ध होगा, उतना ही एकाग्र होगा। द्वितीयत: जिस विषय में हमारी रुचि होती है, उसमें हमारा मन स्वत: ही एकाग्र हो जाता है, अत: अपने पाठ में रुचि उत्पन्न करें। तीसरा यह कि जिस ओर हमें प्रोत्साहन या सफलता मिलती है, उस ओर हमारी रुचि भी बढ़ने लगती है और हमारा मन उस पर एकाग्र हो जाता है। चौथा, अभ्यास करते-करते भी हम अपनी एकाग्रता बढ़ा सकते हैं। पाँचवाँ, कुछ शारीरिक खेल हैं, जिनसे स्वास्थ्य अच्छा रहता है और एकाग्रता भी बढ़ती है। ऐसे खेलों को खेलना बहुत लाभदायक होता है। इस प्रकार विद्यार्थियों को विभिन्न प्रकार से अपनी एकाग्रता बढ़ाने का प्रयास करना चाहिए।

श्वान निद्रा – विद्यार्थियों की निद्रा श्वान अर्थात् कुत्ते की भाँति होनी चाहिए। जिस प्रकार श्वान थोड़ी-सी आहट होने पर ही उठ बैठता है, उसी प्रकार विद्यार्थियों को भी चौकन्ना होना चाहिए। विद्यार्थियों को आवश्यकता से अधिक नहीं सोना चाहिए। जो विद्यार्थी प्रात: उठकर योग-व्यायाम आदि में लग जाते हैं, उनका शरीर और मन प्रफुल्लित रहता है। उनकी क्षमता विलम्ब से उठने वाले विद्यार्थियों से कहीं अधिक होती है। स्वामी विवेकानन्द जी दुर्बलता को ही हमारी प्रगति में बाधक बताते हुए कहते हैं, ''दुर्बल न तो इहलोक के योग्य है, न किसी परलोक के। दुर्बलता से मनुष्य परधीन बनता है। दुर्बलता से ही सब प्रकार के शारीरिक और मानसिक दुख आते हैं। दुर्बलता ही मृत्यु है।''[३] आलस्य के कारण युवावस्था में ही दुर्बलता आ जाती है। सुभाषित आलस्य के परिणाम बताते हुए कहते हैं –

अलसस्य कुतो विद्या अविद्यस्य कुतो धनम्।
अधनस्य कुतो मित्रं अमित्रस्य कुतः सुखम्।।

अर्थात् आलसी (व्यक्ति) को विद्या कहाँ? विद्याविहीन को धर्म कहाँ? धनविहीन को मित्र कहाँ? और मित्रविहीन को सुख कहाँ मिलता है?

क्या आलस्य को दूर किया जा सकता है? हाँ, इसका निवारण है – वह है दृढ़ता और इच्छा शक्ति। आइए, इस पर हम विचार करें। कई विद्यार्थी ऐसा निर्णय लेते हैं कि वे सुबह उठकर पढ़ेंगे, पर जब अलार्म की घंटी बजती है, तब मन कहता है कि पाँच मिनट और सो लेते हैं। उस पाँच मिनट में कभी-कभी एक-दो घंटे भी बीत जाते हैं। ऐसी स्थिति में विद्यार्थी को अलार्म बजते ही उठ जाना चाहिए और मन में दृढ़ भावना बनानी चाहिए कि मन मेरा दास है, मैं मन का दास नहीं हूँ। एक विद्यार्थी को इस प्रकार प्रात: उठने की इच्छा तो होती थी, पर नींद में ही वह अलार्म बन्द करके सो जाया करता था, फिर बाद में उसे बहुत पश्चात्ताप होता था। तब उसने अलार्म-घड़ी को अलमारी के ऊपर रखना प्रारम्भ किया, जिसके कारण उसे अलार्म बंद करने के लिए अलमारी के पास एक कुर्सी रखनी पड़ती थी और फिर उस पर चढ़कर अलार्म बंद करना पड़ता था। इस प्रकार अभ्यास करते हुए उसने अपनी निद्रा पर विजय पायी। अत: विद्यार्थियों को दृढ़ इच्छा शक्ति के द्वारा निद्रा से युद्ध करते हुए आलस्य का त्याग करना चाहिए।

अल्पहारी – यहाँ अल्पहारी का तात्पर्य अति कम खाने से नहीं है, बल्कि आवश्यकतानुसार भोजन करने से है या यूँ कहें कि अति भोजन के वर्जन से है। यदि विद्यार्थी आवश्यकता से अधिक आहार करे, तो उसे निद्रा आयेगी और वह पढ़ने में सक्षम नहीं हो सकेगा। इसी प्रकार यदि अति भोजन का अभ्यास हो जाये, तो मोटापा आ जाता है। मोटापे के फलस्वरूप आलस्य और बीमारी का प्रकोप होने लगता है। आलस्य और बीमारियों के कारण दुर्बलता आती है और विद्यार्थी बुद्धिहीनता का शिकार हो जाता है। स्वामी विवेकानन्द जी आहार सम्बन्धी निर्देश देते हुए कहते हैं, ''कुछ दूसरे प्रकार के आहार हैं, जिनका शरीर पर प्रभाव पड़ता है और प्रकारान्तर से वे मन पर भी अत्यधिक प्रभाव डालते हैं। इससे हम बहुत बड़ा पाठ यह सीखते हैं कि हम जिन दुखों को भोग रहे हैं, उनका अधिकांश हमारे खाये हुए

२ वही, ४/१०९
३ वही, ९/१७७

आहार से ही प्रसूत होता है। अधिक मात्रा में तथा दुष्पाच्य भोजन के उपरान्त हम देखते हैं कि मन को वश में रखना कितना कठिन हो जाता है।''[४] उसी प्रकार आवश्यकता से कम खाने पर भी शरीर व मन दुर्बल होता है, अत: आवश्यकता से कम खाना भी अनुचित है।

अत: एक श्रेष्ठ विद्यार्थी को दृढ़ संकल्प करना चाहिए कि वह लोभवश आहार नहीं करेगा, बल्कि अपने स्वास्थ्य हेतु ही आवश्यकतानुसार भोजन करेगा। हमें स्वयं विचार कर अपने स्वास्थ्य के अनुकूल सुपाच्य भोजन ही करना चाहिए। साथ-ही-साथ हमें परिश्रम, खेलकूद और व्यायाम आदि भी करना चाहिए। बुद्ध देव का यह उपदेश कि मध्यम पथ का अवलम्बन करो, बिलकुल सटीक है। इस प्रकार विद्यार्थियों को न अत्यन्त कम, न अत्यधिक भोजन करना चाहिए।

गृहत्यागी – क्या गृहत्यागी का अर्थ घर छोड़कर चले जाना है? क्या माता-पिता का त्याग करना है? कदापि नहीं। बल्कि इसका तात्पर्य घर में उपलब्ध भौतिक सुख-सुविधाओं से दूर रहने से है, जिससे हम ठीक से अध्ययन कर सकें। प्राचीन काल में विद्याध्ययन हेतु गुरु-गृहवास की परम्परा थी, जिसमें यह आवश्यकता स्वत: ही पूर्ण हो जाती थी। परन्तु वर्तमान समय में इसे कर पाना अत्यन्त कठिन हो गया है, क्योंकि अधिकांशत: विद्यार्थी अपने घरों में ही रहकर विद्याध्ययन करते हैं, जहाँ अभिभावक हमेशा या तो टीवी के सामने बैठकर कार्यक्रम देखते रहते हैं या मोबाइल, कम्प्यूटर आदि में व्यस्त रहते हैं। बच्चे भी इसी परिवेश में बड़े होते हैं। प्रारम्भ में तो बच्चे गेम्स और कार्टून के द्वारा इन उपकरणों के अभ्यस्त हो जाते हैं। आयु के बढ़ने के साथ ही साथ उनकी रुचियाँ बदलने लगती हैं। चूँकि वे अब इन उपकरणों के अभ्यस्त हो चुके होते हैं और उनकी रुचियों का विषय इन उपकरणों के द्वारा सरलता से उपलब्ध भी हो जाता है। अत: यह विद्यार्थियों के लिए एक नशे की भाँति हो जाता है। तब अभिभावक भी उनसे इन उपकरणों को दूर करने में सक्षम नहीं हो पाते। यहाँ यह प्रश्न किया जा सकता है कि क्या इन उपकरणों को पूर्णत: बन्द कर दिया जाय? नहीं, आधुनिक शिक्षा-प्रणाली में हमें तकनीकी ज्ञान होना आवश्यक है। यदि टीवी आदि में मात्र मनोरंजन के कार्यक्रम ही देखते रहे, तो उनमें सृजनात्मक शक्ति का अभाव होने लगेगा। विद्यार्थियों को इन उपकरणों का उपयोग रचनात्मक कार्यों हेतु प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए।

गृहत्यागी का दूसरा अर्थ यह भी है कि विद्यार्थी पारिवारिक उलझनों से दूर रहकर विद्याध्ययन करे। यदि घर में अभिभावकों के बीच झगड़ा होता रहे, तो वह बच्चों में गहरा मनोरोग उत्पन्न कर देता है। वे बचपन से ही नकारात्मक सोचवाले अथवा मानसिक असंतुलन वाले हो जाते हैं, जिसके कारण वे कभी अच्छे विद्यार्थी नहीं बन पाते। एक स्वस्थ और बुद्धिमान बच्चा भी उचित परिवेश के अभाव में विद्याध्ययन नहीं कर पाता। अत: विद्यार्थी को घर में उपलब्ध आराम के जीवन से तथा घरेलू समस्याओं से दूर रहने का प्रयास करना चाहिए।

घर के प्रति उपरोक्त दोनों प्रकार की आसक्ति का त्याग करना ही विद्यार्थी का उत्तम लक्षण है। स्वामी विवेकानन्द जी कहते हैं, 'हमारे प्राय: सभी क्लेशों का कारण हममें अनासक्ति की क्षमता का अभाव है। अत: मन की एकाग्रता की शक्ति के विकास के साथ-साथ हमें अनासक्ति की क्षमता का भी विकास करना होगा। सब ओर से मन को हटाकर किसी एक वस्तु में उसे लगाना ही नहीं, वरन् एक क्षण में उससे निकाल कर किसी अन्य वस्तु में लगाना भी हमें अवश्य सीखना चाहिए। इसे सरल बनाने के लिए इन दोनों का अभ्यास एक साथ बढ़ाना चाहिए। यह मन का सुव्यवस्थित विकास है।[५]

उपसंहार – एक श्रेष्ठ विद्यार्थी को असफलता के पश्चात् भी प्रयास करते रहना चाहिए । उसे मन को नियन्त्रित करके अध्ययन में केन्द्रित करना चाहिए, चौकन्ना रहना चाहिए, संयमित आहार करना चाहिए और घर की सुख-सुविधाओं से दूर रहते हुए विद्याध्ययन करना चाहिए। उपरोक्त नियमों का पालन करने के लिए विद्यार्थियों को कुछ सुखों का त्याग तो अवश्य ही करना पड़ता है।

४ वही, ९/४

५ वही, ४/१०८

सुखार्थिनः कुतो विद्या नास्ति विद्यार्थिनः सुखम्।
सुखार्थी वा त्यजेद्विद्यां विद्यार्थी वा त्येजत् सुखम्।।

(महाभारत उद्योग पर्व)

अर्थात् सुख चाहने वाले को विद्या कहाँ? विद्यार्थियों को सुख नहीं होता। सुख चाहनेवाले को विद्या का त्याग करना पड़ता है और विद्यार्थी को सुख का।

चित्रों के माध्यम से हम यह समझ सकते हैं कि इन पाँच लक्षणों में से किसी में यदि हम खरे न उतरे, तो परिणाम क्या होगा।

विद्यार्थी जीवन वह समय होता है, जब हमें विभिन्न समस्याओं का सामना करना पड़ता है और विभिन्न प्रलोभनों के बीच से गुजरना पड़ता है, पर जो विद्यार्थी अपने पथ पर अडिग रहते हैं, वे ही सफल हो पाते हैं। विद्यार्थी जीवन वास्तव में जीवन की नींव होती है, इस समय हम जैसा अभ्यास करते हैं, वही संस्कार हमारे जीवन की विरासत बन जाता है। अत: इन पाँच लक्षणों के समन्वय के द्वारा विद्यार्थी अपने आपको उत्तम विद्यार्थी बना सकते हैं। ○○○
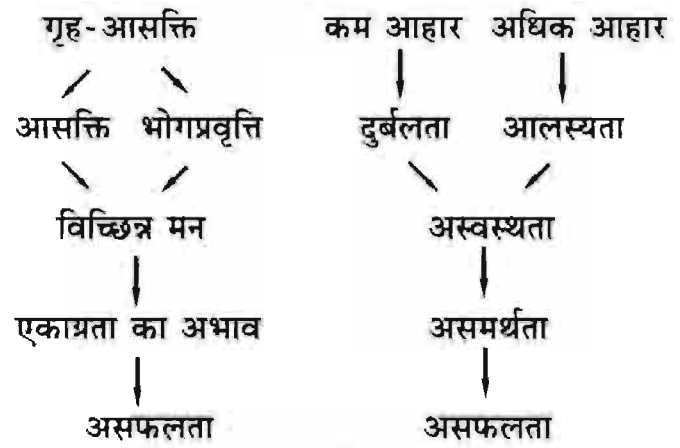
बीती बातें बीते पल

साधक जीवन में अनुशासन

स्वामी कैलाशानन्द जी महाराज रामकृष्ण संघ के सह-संघाध्यक्ष थे। वे स्वामी शिवानन्द (महापुरुष महाराज) के शिष्य थे। सह-संघाध्यक्ष का सेवाभार ग्रहण करने के पूर्व वे रामकृष्ण मठ, चेन्नई में १९४४ से १९७१ तक २७ वर्ष अध्यक्ष पद पर थे। स्वामी कैलाशानन्द जी महाराज का जीवन एक आदर्श और तपस्वी संन्यासी का जीवन था। उनके दिव्य जीवन से प्रेरित होकर अनेक ब्रह्मचारी रामकृष्ण मठ, चेन्नई में सम्मिलित होते थे।

स्वामी कैलाशानन्द जी महाराज कहते थे कि श्रीरामकृष्ण देव के अधिकांश संन्यासी शिष्य नियमों के बड़े कठोर और कड़े अनुशासक थे, किन्तु उनका आन्तरिक हृदय प्रेम से भरा रहता था। वे विनोदपूर्वक ब्रह्मचारियों से कहते, "यह तो अच्छा है कि तुमलोग उनके सम्पर्क में नहीं आए, नहीं तो, क्या पता, उनकी विशेष कड़ी फटकार से तुम लोग यहाँ से भाग जाते।"

स्वामी कैलाशानन्द जी स्वयं भी कड़े अनुशासक थे। साधु-ब्रह्मचारी, भक्तों में यदि कोई भी आश्रम के नियमों का उल्लंघन करता, तो वे जमकर डाँटते। किन्तु उनके इस डाँटने के पीछे उनका कोई स्वार्थ या अहंकार नहीं था। उसके पीछे यही भावना रहती थी कि प्रमादवश साधक के जीवन में कोई आध्यात्मिक व्यतिक्रम न हो। स्वामी विवेकानन्द जी भी कहते थे कि नियमों के पालन से ही नियमों के परे जाना होता है। साधना के प्रारम्भिक काल में साधक को एक विशिष्ट साधन-प्रणाली के अनुसार चलना होता है। स्वामी कैलाशानन्द जी ब्रह्मचारियों से दो बातों के लिए विशेष सावधानी रखने कहते, एक व्यर्थ चर्चा और दूसरी समाचार-पत्रों की राजनीति। साधु-ब्रह्मचारी भी समाचार-पत्र न पढ़ने का उनका नियम आनन्दपूर्वक पालन करते। इस विषय में एक रोचक प्रसंग है।

महाराज तब चेन्नई मठ के अध्यक्ष थे। आश्रम में एक ब्रह्मचारी महाराज जी इलेक्ट्रीकल रख-रखाव का कार्य करते थे। आश्रम-प्रांगण का एक बल्ब फ्यूज हो गया था। उन्हें वहाँ नया बल्ब लगाना था। बल्ब लगाने के लिए कुर्सी की आवश्यकता थी। वहाँ एक गोल टेबल और कुर्सियाँ थीं, जहाँ विभिन्न समाचार-पत्र रखे हुए थे। वे कुर्सी लेने के लिए वहाँ गए और सहज ही उनकी दृष्टि समाचार-पत्र के मुख्य पृष्ठ पर गई। जैसे ही ब्रह्मचारी महाराज की समाचार-पत्रों पर दृष्टि गई, जिससे वे स्वयं भी अवगत नहीं थे, तभी उन्होंने एक जोर से गर्जना सुनी, मानो कोई क्रुद्ध सिंह दहाड़ रहा हो। अचानक ऐसी आवाज सुनकर ब्रह्मचारी महाराज भय के मारे सिहर गए और उनके हाथ का बल्ब नीचे गिरकर फूट गया। वे कुछ समझ सकें, इसके पहले ही स्वामी कैलाशानन्द जी ने उन्हें फटकारना शुरू किया।

परवर्तीकाल में वे ब्रह्मचारी महाराज रामकृष्ण संघ के एक योग्य संन्यासी हुए। इस घटना का स्मरण कर वे कहते कि स्वामी कैलाशानन्द जी से प्राप्त स्नेहमय प्रशिक्षण से उन्हें आध्यात्मिक जीवन में बहुत लाभ हुआ था। ○○○

मेरे जीवन की कुछ स्मृतियाँ (३)

स्वामी अखण्डानन्द

(स्वामी अखण्डानन्द जी महाराज श्रीरामकृष्ण देव के शिष्य थे। परिव्राजक के रूप में उन्होंने हिमालय इत्यादि भारत के कई क्षेत्रों के अलावा तत्कालीन दुर्लंघ्य माने जाने वाले तिब्बत की यात्राएँ भी की थीं। उनके यात्रा-वृत्तान्त तथा अन्य संस्मरण बंगला पुस्तक 'स्मृति कथा' में प्रकाशित हुए हैं, जिनका अनुवाद विवेक ज्योति के पूर्व सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

गंगावारि ब्रह्मवारि

एक अन्य दिन की बात है – मैं खूब सबेरे गया था । ठाकुर ने गंगा-स्नान आदि करके प्रसाद ग्रहण किया और उसके बाद थोड़ा लेट गए । उनके कमरे के पूर्व की ओर के बरामदे का एक हिस्सा विश्राम के लिये बाँस लगाकर घेर दिया गया था । वहीं लोग तम्बाकू आदि पीया करते थे ।

अपराह्न में ठाकुर के उठने के बाद कुछ भक्त आये । मैंने उन लोगों के लिये चटाई बिछा दी और शौच के लिये पंचवटी की ओर गया था । वहाँ से नौबतखाने के पास से घाट की ओर गंगा में शौच करने गया था । उस समय भाटा का जल काफी उतरा हुआ था । तभी देखा – पीछे से ठाकुर कह रहे थे, ''अरे, लौट आ, लौट आ । गंगावारि ब्रह्मवारि है । वहाँ क्या शौच जाते हैं, जा हाँसपुकुर की ओर चला जा ।'' मैंने पूछा, ''जहाँ दूसरा पानी न हो वहाँ?'' ठाकुर बोले, ''वहाँ की बात और है ।''

कीर्तन में समाधि

थोड़ी देर बाद आकर देखा – वे अपने बिस्तर पर बैठे हुए अपने उसी मधुर कण्ठ से गोविन्द अधिकारी का यह कीर्तन गा रहे हैं – ''हमारी राधा वृन्दावन-विलासिनी है – राधा हमारी है, हम राधा के हैं ।'' कीर्तन के रंग-भंग को पूरा करते हुए उनका वक्षस्थल आँसुओं से गीला हो गया और वे समाधिस्थ हो गए ।

मैं अवाक् होकर बैठा रहा । अपने इस जीवन में कोई दूसरी ऐसी अद्भुत घटना देखने को नहीं मिली । उसी कीर्तन को उन्होंने कितनी ही तरह से गाया ! सारा अपराह्न कीर्तन में बीत गया । उस दिन ठाकुर के एक भक्त मनोमोहन मित्र भी वहाँ थे ।

एक अन्य दिन की बात है । रविवार को ठाकुर के पास गया था । उस दिन विजयकृष्ण गोस्वामी आये हुए थे । तब भी वे साधारण ब्राह्मसमाज के आचार्य थे । उन्होंने गेरुए रंग की धोती और एक लम्बा कुर्ता पहन रखा था । उनके साथ उनकी सास, स्त्री, पुत्र (योगजीवन), पुत्री (योगमाया) और ढाका के (साधारण ब्राह्मसमाज के) नित्यगोपाल गोस्वामी भी थे ।

स्मरण आता है कि ठाकुर के कमरे में और भी दो-एक जन थे । तात्पर्य यह कि कमरा पूरा भरा हुआ था । मास्टर महाशय (श्रीम) भी थे । वे प्राय: ठाकुर के छोटे तख्त के नीचे पाँवपोश के पास बैठा करते थे ।

कोई-कोई ब्राह्मभक्त ठाकुर की बातें सुनते-सुनते आँखें मूँद लेते । एक बार ठाकुर ने थोड़ा नाराज होकर कहा था, ''क्यों जी, तुम लोग आँखें मूँद-मूँदकर क्या देखते हो?'' शायद उनका तात्पर्य यह था कि वे लोग जब वहाँ आये हैं, तो उनका दर्शन, बातें तथा उपदेश आदि सुनना ही उन लोगों का कर्तव्य है ।

इसके बाद ठाकुर ने विजय गोस्वामी से कहा, ''देखो विजय, इस समय तुम कुटीचक हो ।''[3]

पहले मैंने एक गायिका के मुख से एक भजन सुना था – (भावार्थ) ''आओ माँ, आओ माँ, हे हृदय में रमण करनेवाली, मेरे प्राणों की पुतली माँ, आओ । मेरे हृदय-आसन पर विराजमान हो जाओ और मैं तुम्हारे मुख को निरखता रहूँ ।''

इस भजन को सुनते ही ठाकुर समाधिमग्न हो जाते । विजयकृष्ण गोस्वामी के आने पर यदि वह गायिका भी नहीं आती, तो ठाकुर कहते, ''अजी, उस महिला को लाना । उस महिला को उस दिन देखा – काले रंग की, विधवा, गोल-मटोल मुख और अच्छा गाती थी । इस भजन के 'आओ माँ, आओ माँ' अंश को गाते ही ठाकुर भाव में मतवाले हो गये । वह ऐसा अद्भुत भाव था कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता । आँसुओं से उनका पूरा सीना भीग गया और वे गहरी समाधि में डूब गये थे ।

उन दिनों दक्षिणेश्वर में होनेवाली आरती जिन लोगों ने देखी है, वे ही उसकी महिमा को जानते हैं । दक्षिणेश्वर की शोभा भी अपूर्व हुआ करती थी ।

उनकी उग्रमूर्ति

कुछ दिनों बाद दक्षिणेश्वर में जाकर देखा – वह बालिका वहीं है । मैं ठाकुर के पास जाकर बैठ गया । वहाँ दो-तीन अन्य लोग तथा रामलाल दादा भी थे ।

ठाकुर बोले, ''देखो जी, इस बालिका के मुख से 'आओ

माँ, आओ माँ' भजन सुनना मुझे बड़ा अच्छा लगता है । इसीलिये विजय के आने पर यह बालिका यदि नहीं आती, तो मैं कहता, 'अजी, उस बालिका को नहीं लाये?' इस बार वह रह गयी । उस दिन देखा कि मुझे देखकर वह घूँघट खींच रही है । मैंने कहा, 'यह क्या जी? तुम मुझे देखकर घूँघट क्यों खींच रही हो?' देखा कि वह शरीर हिला-हिलाकर कह रही है, 'यह भी क्या तुम नहीं जानते?' एक अन्य दिन देखा घूँघट के भीतर रो रही है । मैं बोला, 'यह क्या जी? तुम मुझे देखकर घूँघट काढ़ती हो, फिर रोने लगती हो, बात क्या है?' वह बोली, 'तुम्हारे साथ मेरा मधुर भाव है ।' मैं बोला, 'क्या कहती हो? मेरा तो मातृभाव है ।'''

इतना कहकर ठाकुर सहसा उठ पड़े । उनका शरीर क्रोध से फूल उठा और धोती कमर से खिसककर गिर पड़ी । वे अपने कमरे के एक छोर से दूसरे छोर तक सिंह के समान टहलने लगे और कहने लगे, ''रामलाल, रामलाल, यह कहती क्या है – मधुरभाव है ! और भी कितने प्रकार से बुरा-भला कहने लगे ।''

उनकी वह उग्रमूर्ति देखकर मैं स्तम्भित रह गया । इसके बाद रामलाल दादा ने उस बालिका से कहा, ''उठो, उठो, जल्दी उठो ।''

इसके बाद उन्होंने धीरे-धीरे उसे नौबतखाने के घाट पर ले जाकर एक नाव में बैठा दिया । उस समय भाटे का समय था । उसे कलकत्ते भेज दिया ।

बालिका के चले जाने पर ठाकुर की सहज अवस्था हो गयी और वे सबके साथ बातचीत करने लगे ।

स्वप्नसिद्ध और हठात-सिद्ध

उनके पास जब भी गया हूँ, देखा हूँ – उनके पास जितने भी प्रकार के लोग आते, उनके साथ वे धर्म तथा भगवान को छोड़ अन्य किसी भी विषय पर बातें नहीं करते । बीच-बीच में कोई मजेदार बात कहकर हास्यरस का फव्वारा छोड़ देते ।

एक दिन वे बोले, ''सिद्ध अनेक प्रकार के होते हैं – नित्यसिद्ध, हठातसिद्ध, स्वप्नसिद्ध, दैवसिद्ध, कृपासिद्ध ।''

यह कहकर वे स्वप्नसिद्ध और हठातसिद्ध के विषय में बोले – ''एक ब्राह्मण तथा ब्राह्मणी बड़े गरीब थे । उनका इकलौता पुत्र परदेश में नौकरी करता था और उसी से उनकी गृहस्थी चलती थी । ब्राह्मण अपनी कुटिया के भीतर फटी हुई चटाई पर निद्रामग्न था, तभी डाकिये ने आकर ब्राह्मणी को एक पत्र दिया । उसने उसे एक पड़ोसी के पास ले जाकर पढ़वाया । उससे पता चला कि उसके जीवन के आशा-भरोसा रूप इकलौता पुत्र का विसूचिका (हैजा) रोग से देहान्त हो गया है । इधर ब्राह्मण ने स्वप्न में देखा कि वह एक भव्य अट्टालिका में सात बच्चों का बाप होकर दुग्धफेन के समान नरम बिस्तर पर लेटा हुआ है । उन सात पुत्रों में से कोई उसके पके हुए बाल चुन रहा है, कोई उसके पाँव दबा रहा है, कोई हाथ तथा अन्य अंग दबा रहा है, कोई हवा कर रहा है, तो कोई लाकर पानी पिला रहा है । नींद खुल जाने पर उसने देखा कि वह अपनी झोपड़ी में ही चटाई पर लेटा हुआ है और सातों पुत्रों में से एक भी नहीं है । वह ब्राह्मण यह सोचकर बड़ी चिन्ता में पड़ गया कि वे सारे पुत्र कहाँ चले गये । उसी समय ब्राह्मणी उस झोपड़ी में आकर, 'अजी, मेरा क्या हुआ जी' कहकर रोते हुए पछाड़ खाकर गिर पड़ी । ब्राह्मण की तब भी पूरी चेतना नहीं लौटी थी । ब्राह्मणी उसे वैसी हालत में देखकर उसके पास गयी और उसे पूरी तौर से होश में लाकर बोली, 'तुम इस प्रकार क्यों बैठे हुए हो? तुम क्या सुन नहीं पाये हो कि हमारा कैसा सर्वनाश हो गया है?' ब्राह्मण ने पूछा, 'क्या हुआ है?' वह बोली, 'हमारा पुत्र नहीं रहा ।' इस पर ब्राह्मण ने कहा, 'तुम केवल उस एक पुत्र के लिये विलाप कर रही हो, परन्तु मैं तो देख रहा था कि मेरे सात पुत्र मुझे चारों ओर से घेरकर मेरी सेवा कर रहे हैं । अब बताओ, मैं तुम्हारे उस एक पुत्र के लिये रोऊँ या अपने उन सात पुत्रों के लिये? इसे यदि स्वप्न कहो, तो फिर वह भी तो स्वप्न ही है !' ''

इसके बाद वे हठात-सिद्ध के बारे में बोले – ''एक ब्राह्मण नाव में बैठे हुए एक नहर से होकर जा रहे थे । रात का समय था । निकट ही श्मशान था । उधर से आ रही आवाज से उन्हें पता चला कि एक साधक भागे जा रहे हैं । बात यह थी कि एक साधक उस श्मशान में शव-साधना कर रहे थे । शव-साधना का नियम यह है कि शव को पीठ के बल लिटा दिया जाता है और उसके ऊपर बैठकर जप किया जाता है । जप करते-करते वह शव सहसा जाग उठता है । तब उसके मुख में चने और मदिरा देनी पड़ती है । वह उसी को खाता रहता है । उस समय फिर जप शुरू कर देना चाहिये । वह शव इसी प्रकार बीच-बीच में भय दिखाता रहता है । वे साधक उस शव की विभीषिका को देखकर भय से भागे जा रहे थे । उन ब्राह्मण ने उसी आवाज को सुनकर अपने मल्लाह से कहा, 'नाव को किनारे लगाओ ।' नाव के तट से लगते ही ब्राह्मण उस श्मशान में जाकर शव के ऊपर

शेष भाग पृष्ठ १३२ पर

गीता में भक्ति का स्वरूप

प्रो. लक्ष्मीनारायण धूत, इन्दौर

समय के साथ भक्ति के बारे में धारणायें बहुत बदली हैं। आज भक्ति के बारे में जो आम धारणा है, वह भाव-भक्ति वाली है। गीता श्रीकृष्ण की वाणी है और कृष्ण को हुए ५००० वर्ष से अधिक हो चुके हैं। गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को भक्ति का उपदेश देते हुए ही दुष्ट कौरवों के विरुद्ध युद्ध करने का निर्देश दिया है, तो वहाँ भक्ति का स्वरूप क्या है, इसे समझ लेना हम सबके लिये बहुत हितकारी होगा। भक्ति की बात गीता में अनेक स्थलों पर कही गई है और एक पूरा बारहवाँ अध्याय ही इसे समर्पित किया गया है। वहाँ केवल सामान्य भावावेश की बात नहीं कही गयी है, अपितु भक्ति का तात्त्विक सोपानक्रम में वर्णन किया गया है।

भक्ति का प्रसंग है, तो सर्वप्रथम हमें ब्रह्म, भगवत् सत्ता, परमेश्वर, ईश्वर आदि की स्पष्ट धारणा कर लेनी चाहिए। भक्ति के सन्दर्भ में सगुण सत्ता की धारणा होती है। सगुण होते हुये भी साधना द्वारा वह बोधगम्य है, अन्यथा अव्यक्त है। ईश्वरभाव मन-बुद्धि इन्द्रियबोध्य है, किन्तु ईश्वरीय दिव्य चेतन सत्ता इन्द्रियातीत है। फिर भी है अवश्य ऐसी सत्ता जो सबका स्वामी है, प्रभु है, संचालक है। यह ज्ञानियों के उस निर्गुण ब्रह्म से भिन्न है, जिसकी उपासना पद्धति तथा उसे प्राप्त करने का उद्देश्य आदि सब कुछ भिन्न है। ब्रह्मवादियों का उद्देश्य होता है परम शान्ति की प्राप्ति, जबकि भक्त का लक्ष्य होता है परमेश्वर की अर्थात् समस्त जीवों में विद्यमान परमेश्वर के सुख में अपने सुख की अनुभूति करना। यह भक्ति का स्वरूप है।

गीता ने भक्ति की पूर्णता को 'अनन्य भक्ति' कहा है – **भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन । (११.५४)** यह भक्ति की सर्वोच्च स्थित है और उसकी प्राप्ति की साधना बारहवें अध्याय के श्लोक ६-७ तथा अवरोह क्रम में ८ से १२ तक के कुल ८ चरणों में वर्णित की है। सर्वप्रथम अनन्य भक्ति रूप सबसे उच्च सोपान का वर्णन दो श्लोकों में इस प्रकार किया गया है -

ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि सन्न्यस्य मत्पराः।
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते।।६।।
तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात्।
भवामि नचिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम्।।७।।

– जो सब कर्मों को मुझ में अर्पण करके मेरे परायण होकर निरन्तर चिन्तन करते हुए अनन्य भक्तियोग से मेरी (मुझ सगुण रूप परमेश्वर की) ही उपासना करते हैं, हे अर्जुन ! उन मुझमें सम्पूर्ण चेतना लगा देनेवालों का मैं बिना विलम्ब के जन्म-मृत्यु वाले संसार-सागर से उद्धार करने वाला होता हूँ।

मयि आवेशित चेतसाम् – सम्पूर्ण चेतना भगवान को समर्पित कर देने का अर्थ है - प्राण, मन, बुद्धि और अहंकार, इन चारों स्तरों की चेतना का समर्पण। प्राणशक्ति से कर्म सम्पन्न होते हैं। अत: प्राण समर्पण का अर्थ है – कर्मों का समर्पण, मन-बुद्धि के समर्पण का अर्थ है – निज सुख की कोई कामना और विचार न रखते हुए सब प्राणियों में स्थित भगवान के लिये ही चिन्तन-मनन करना। इसी प्रकार अहंकार के समर्पण का अर्थ होगा – अपने को भगवान का दास या सेवक समझते हुए भगवान की प्रसन्नता के लिये कार्य करना। यह भक्ति का सर्वोच्च रूप है, जिसे यहाँ 'अनन्य भक्ति' के नाम से सम्बोधित किया गया है।

किन्तु अहंकार छोड़ना या अहंकार का समर्पण करना बड़ा कठिन कार्य है, अत: जो इस स्तर तक अभी नहीं पहुँच सकते, वे सेवा-कर्म करते हुए मन और बुद्धि के समर्पण की साधना करें। दूसरे चरण की इस साधना को अगले श्लोक में वर्णित किया गया है -

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय।
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः।।८।।

मुझमें मन को लगा और मुझमें ही बुद्धि को लगा, इससे तू मुझ में ही निवास करेगा, इसमें संशय नहीं है।

यदि मन और बुद्धि अर्थात् चित्त को मुझ में लगाना भी किसी के लिए कठिन हो, तो वह अपने मन में मुझको प्राप्त करने की इच्छा करने का बारम्बार अभ्यास करे। यह उतरते क्रम में भक्ति साधना का तीसरा सोपान है, जिसे अगले श्लोक में वर्णित किया गया है।

अथ चित्तं समाधातुं न शक्नोषि मयि स्थिरम्।
अभ्यासयोगेन ततो मामिच्छाप्तुं धनञ्जय।।९।।

यदि तुम (या कोई भी साधक) चित्त अर्थात् मन और

बुद्धि को मुझ में स्थिर करने में समर्थ नही है, तो हे धनञ्जय! अभ्यास योग के द्वारा मुझ को प्राप्त होने की इच्छा करो।

चित्त – आठवें श्लोक में श्रीकृष्ण ने मन और बुद्धि को 'मुझ में' लगाने की बात कही थी और यहाँ कहा गया है कि यदि चित्त को मुझ में स्थिर न कर सके..., इससे स्पष्ट है कि यहाँ चित्त शब्द का प्रयोग 'मन+बुद्धि' के लिये हुआ है।

अभ्यास योग – इन शब्दों की यथातथ्य और सर्वोत्तम विवेचना विनोबा की 'गीताई-चिंतनिका' में मिलती है। उन्होंने लिखा है कि मार्ग के अनुरूप इन शब्दों का भावार्थ किया जाना चाहिए। 'योग मार्ग के अभ्यास में प्राणायाम, धारणा आदि, ज्ञानमार्ग के अभ्यास में श्रवण, मनन आदि, तथा भक्ति मार्ग में अभ्यास का स्वरूप होगा तीव्र इच्छा, व्याकुलता'। क्योंकि यहाँ भक्ति के सम्बन्ध में अभ्यास-योग की बात है, अत: यहाँ इसका सम्बन्ध 'तीव्र इच्छा' से है।

भगवत्-प्राप्ति हेतु तीव्र इच्छा का अभ्यास वस्तुत: मन के स्तर की साधना है, जो यहाँ उस साधक के लिए निर्धारित की गई है, जो चौथे श्लोक के अनुरूप है, जिसमें साधक मन तथा बुद्धि को भगवान में लगाने में अपने को असमर्थ पाता है। इस प्रकार, इस तीसरे चरण की साधना में व्यक्तित्व के केवल दो पहलुओं – कर्म और मन को भगवत् सत्ता को समर्पण करके आगे बढ़ने की बात कही गई है।

अब, जो साधक मन का समर्पण करने में भी अपने को असमर्थ पाये, उसके लिये केवल कर्म-समर्पण से भक्ति प्रारम्भ करने का निर्देश अगले चौथे चरण की भक्ति-साधना के रूप में दसवें श्लोक में दिया गया है –

अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽसि मत्कर्मपरमो भव।
मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन्सिद्धिमवाप्स्यसि।।१०।।

(उपरोक्त तीव्र इच्छा वाले) अभ्यास में भी यदि असमर्थ हो, तो मेरे लिये कर्म करने के ही परायण हो। मेरे निमित्त कर्मों को करता हुआ भी तू मेरी प्राप्तिरूप सिद्धि को प्राप्त होगा।

अथैतदप्यशक्तोऽसि कर्तुं मद्योगमाश्रित:।
सर्वकर्मफलत्यागं तत: कुरु यतात्मवान्।।११।।

यदि तुम मेरी प्राप्ति रूप योग के आश्रित होकर उपर्युक्त साधन करने में भी असमर्थ है, तो आत्मवान होने का यत्न कर और सभी कर्मों के फल का त्याग कर।

यतात्मवान् – इससे पूर्व के सभी श्लोकों में भक्ति के जो स्वरूप बतलाये गये थे, वे समष्टिगत परमात्मा की उपासना करनेवालों के लिये कहे गये थे, तथा दसवाँ भी ऐसे ही भगवत् उपासक के लिये कहा गया था कि वह सब कर्मों को भगवान के लिये ही करे। किन्तु जो साधक समष्टिगत भगवत् सत्ता की प्राप्ति की अपेक्षा अपने अन्तर में आत्मा की अनुभूति करना चाहता हो, उसके लिये कर्म-बन्धन से मुक्त रहने के लिये ग्यारहवें श्लोक में कर्मफल त्याग का निर्देश दिया गया है। ऐसे साधक के लिये ही यतात्मवान् शब्द का प्रयोग किया गया है और कहा गया है कि उसे कर्मफल का त्याग तो करना ही चाहिए, इसे हम अवरोह क्रम में भक्ति का पाँचवाँ चरण कहेंगे।

जो इस पाँचवें चरण की साधना भी नहीं कर सकते, उनके लिये आगे तीन साधनाओं का क्रम वर्णित है -

श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाद्ध्यानं विशिष्यते।
ध्यानात्कर्मफलत्याग: त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्।।१२।।

अभ्यास से निश्चय ही ज्ञान श्रेष्ठ है, ज्ञान से ध्यान श्रेष्ठ है, ध्यान से कर्मफल का त्याग श्रेष्ठ है। त्यागात् शान्ति: अनन्तरम् की सम्यक् विस्तृत व्याख्या नीचे दी जा रही है।

इस श्लोक ने व्याख्याकारों को बहुत उलझन में डाला है। यह कूट श्लोक महाभारत की उस प्रारम्भिक कहानी की याद दिलाता है, जिसके अनुसार भगवान व्यास बीच-बीच में एकाध ऐसे कूट श्लोक की रचना कर देते थे, जिसे लिखने के पूर्व भगवान गणेश को उस श्लोक का भाव समझने के लिये अवकाश लेना आवश्यक हो जाता था और व्यासजी को भी आगे की रचना के लिए सोचने का समय मिल जाता था। इस श्लोक में ऐसे बहु अर्थवाले शब्दों का प्रयोग हुआ है जिसके कारण टीकाकार समुचित समय न दे सकने के कारण, भावार्थ करने में न्याय नहीं कर पाये। स्वामी अखण्डानन्दजी ने शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य आदि महात्माओं की व्याख्याओं का सन्दर्भ देकर उनके इस निष्कर्ष की पुष्टि की है कि पूर्व के श्लोकों में छठवें से ग्यारहवें में जो अवरोही क्रम वर्णित था, यहाँ से उलट कर आरोही क्रम कर दिया गया है। किन्तु ऐसा करने से विषय प्रतिपादन में क्या कुछ उपलब्धि हुई, उसकी व्याख्या नहीं की गई। इससे उपलब्धि के स्थान पर संभ्रान्ति बढ़ी। इसी प्रकार तिलक महोदय, स्वामी चिन्मयानन्द, स्वामी रंगनाथानन्द आदि ने इस श्लोक में वर्णित क्रम अभ्यास-ज्ञान-ध्यान-कर्मफल-त्याग (अर्थात् कर्मयोग) की यहाँ (और अन्यत्र भी) श्रेष्ठता बतलाई गई है । इसी क्रम में अगले वाक्य – 'कर्मफल के रूप में त्यागात् शान्ति: अनन्तरम्'

का यह सामान्य शाब्दिक अर्थ कि कर्मफल के रूप में त्याग के पश्चात् शान्ति प्राप्त होती है, विषय की एकरसता को खण्डित कर रहा है और इस रूप में अग्राह्य प्रतीत होता है कि शान्ति की प्राप्ति वस्तुत: निर्गुण ब्रह्म के उपासकों का प्राप्य लक्ष्य होता है, सगुण परमात्मा की उपासना करने वालों का परम लक्ष्य 'अनन्य भक्ति' की प्राप्ति है, शान्ति नहीं। अनन्य भक्ति के साधक तो स्वयं के लिये कुछ भी चाह नहीं रखते, शान्ति की चाह भी नहीं।

हमारी दृष्टि में इस सम्पूर्ण प्रकरण में अवरोही और आरोही ये दो क्रम नहीं है, वरन् एक ही क्रम बन जाता है, जब हम बारहवें श्लोक के कुछ शब्दों के उपयुक्त अर्थों का चुनाव करते हैं। इस हेतु हम श्लोक की विषय वस्तु का अवलोकन करते हुए इस प्रकार के शब्दों के उपयुक्त अर्थों पर विचार करेंगे।

श्लोक के प्रथम तीन चरणों में जो कहा गया है, उसे अवरोही क्रम में देखें, तो अर्थ होगा - कर्मफल-त्याग से ध्यान निम्नतर है और ज्ञान से निम्नतर है अभ्यास। श्लोक ६ से ११ में भक्ति के उतरते क्रम में जिन सोपानों का वर्णन हुआ था, उसमें पाँचवाँ चरण था कर्मफलत्याग। अत: हमें ध्यान को छठा चरण, ज्ञान को सातवाँ और अभ्यास को आठवाँ चरण अवरोही क्रम में पहचानना है।

कर्मफलत्याग से नीचे जो ध्यान को रखा गया है, सर्वप्रथम हमें इसको समझना है। जो कर्मफल-त्याग करने में अपने को असमर्थ पाते हैं, उनके लिए ध्यान करने का निर्देश दिया गया है, इससे इंगित होता है कि यहाँ ध्यान का अर्थ अपने अन्तर की खोज है। अन्तर में अभी स्वार्थवृत्तियाँ अथवा रागद्वेष के संस्कार गहरे पड़े होंगे। इस स्थिति को ध्यान की प्रक्रिया द्वारा जानना है।

इन वृत्तियों को पहचान कर उनसे मुक्ति के उपाय के रूप में ज्ञान बताया गया है। निश्चय ही यहाँ ज्ञान से तात्पर्य परमात्मा की अनुभूति रूप स्वसंवेदी ज्ञान की बात नहीं है। यह परसंवेदी धार्मिक आध्यात्मिक ज्ञान है, जिसे सत्संग से अथवा सत् साहित्य के अनुशीलन से प्राप्त करके पथ पर आगे बढ़ा जा सकता है।

यदि अभी इस प्रकार की गतिविधियों में भी रुचि जाग्रत न हो रही हो, तो उनके लिए 'अभ्यास' की बात कही गई है। जैसाकि 'अभ्यास-योग' के सन्दर्भ में हम श्लोक-९ की टिप्पणी में कह चुके हैं, अभ्यास का स्वरूप विभिन्न योगों के सम्बन्ध में भिन्न है, अत: यहाँ भी हमें अभ्यास का अर्थ सब से प्रारम्भिक स्तर की भक्ति के सन्दर्भ से लगाना होगा। हमारा अनुमान है कि यहाँ योग जैसे किसी अभ्यास की बात हो सकती है। योग के अभ्यास से जहाँ शरीर स्वस्थ होगा, वहीं प्राण शक्ति पर नियंत्रण से मन की शक्ति बढ़ेगी और शारीरिक-प्राणिक क्रियाओं पर नियंत्रण सिद्ध होने पर मन में संतुष्टि और प्रसन्नता आयेगी, तो आगे सातवें और छठे स्तर की साधना में उत्साह आयेगा।

अत: यह निष्कर्ष निकलता है कि व्यक्त परमात्मा की भक्ति रूप उपासना के कुल आठ सोपान हैं। अवरोही क्रम में ये इस प्रकार हैं – १. सर्वोच्च स्थिति वह है, जिसे साधक उसे प्राप्त चेतना के सभी आयामों – प्राण, कर्म, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार को भगवत् सत्ता में समर्पण कर दे। इसे अनन्य भक्ति कहा गया है। अनन्य अर्थात् अन्य कुछ नहीं, जो कुछ है परमात्मा का है, अपना कुछ भी नहीं। इसी प्रकार जीवन के सभी क्रिया कलाप हों। २. अहंकार का समर्पण सब से कठिन कार्य होने से यदि अभी यह संभव नहीं हो रहा है, तो अहंकार को रहने दें और शेष तीन कर्म, मन एवं बुद्धि (विचार) को ईश्वर के प्रति समर्पित करें ३. यह भी सम्भव न हो, तो मन में परमात्मा प्राप्ति की तीव्र इच्छा रखते हुए कर्मों का समर्पण करें। ४. यह भी न हो, तो केवल भगवत्-भाव से सेवा-साधना करते रहें। ५. ऐसा न हो, तो कर्मफल-त्याग का अभ्यास करें। ६. यदि उपरोक्त में कठिनाई हो, तो ध्यान के द्वारा अपने अन्त:करण की वृत्तियों का अवलोकन करें। ७. ध्यान द्वारा जो अनुचित वृत्तियाँ दिखें, तो सत्संग और सत्-साहित्य द्वारा इन्हें नियन्त्रित करें। बारहवें श्लोक में इसे ज्ञान कहा गया है। ८. उपरोक्त बौद्धिक ज्ञान को जीने में पर्याप्त उत्साह न बने, तो योग का अभ्यास करें। उसमें सफलता मिलने पर उत्साह भी आयेगा। तब एक-एक सीढ़ी ऊपर चढ़ें।

त्यागात् शान्ति: अनन्तरम् , इन शब्दों के सामान्य अर्थ यह संदेशे देते दिखते हैं कि कर्मफलत्याग की साधना से शान्ति की वह सर्वोच्च स्थिति प्राप्त हो जायेगी, जो निर्गुण ब्रह्म के उपासकों का प्राप्य लक्ष्य होता है। किन्तु यहाँ तो प्राप्य अनन्य भक्ति है, शान्ति नहीं। इसलिए उक्त सामान्य अर्थ के रूप में तो ये शब्द पूरे विवरण में असंगत हो जाते हैं। अत: आवश्यक है कि हम इन शब्दों के सुसंगत अर्थ का अनुसन्धान करें।

संस्कृत कोश (आप्टे) के अनुसार 'अनन्तर' शब्द का

शेष भाग पृष्ठ १२९ पर

सारगाछी की स्मृतियाँ (६५)

स्वामी सुहितानन्द

स्वामी प्रेमेशानन्द

(स्वामी सुहितानन्द जी महाराज रामकृष्ण मठ-मिशन के उपाध्यक्ष हैं। महाराजजी जगजननी श्रीमाँ सारदा देवी के शिष्य स्वामी प्रेमेशानन्द जी महाराज के अनन्य निष्ठावान सेवक थे। उन्होंने समय-समय पर महाराजजी के साथ हुए वार्तालापों के कुछ अंश अपनी डायरी में गोपनीय ढंग से लिखकर रखा था, जो साधकों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। 'उद्बोधन' बँगला मासिक पत्रिका में यह मई-२०१२ से अनवरत प्रकाशित हो रहा है। पूज्य उपाध्यक्ष महाराज की अनुमति से इसका अनुवाद रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के स्वामी प्रपत्त्यानन्द और वाराणसी के रामकुमार गौड़ ने किया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' में क्रमश: प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

१३-२-१९६१

महाराज – कोई-कोई कहते हैं कि आन्तरिक इच्छा रहने से ही सुयोग मिलेगा। मैं कहता हूँ, ठाकुर की इच्छा बाद में, पहले पुरुषार्थ करो। सुन्दर साधक-जीवन बिताने की इच्छा का निर्माण तो करना होगा। दस वर्षों तक कहते-कहते तो इच्छा तैयार होती है। किसी की कुछ प्रतिक्रिया को इच्छा कहते हैं, किसी अभावबोध से इच्छा तैयार होती है।

प्रश्न – तोतापुरी और गोपाल-की-माँ की आध्यात्मिकता में क्या अन्तर है?

महाराज – तोतापुरी दाएँ-बाएँ किसी ओर न देखते हुए सीधे ब्रह्म तक गये हैं। इसीलिए ठाकुर ने उन्हें पकड़कर सभी मार्गों को ज्ञात कराकर छोड़ा। गोपाल-की-माँ का प्रसंग देखो, तो साक्षात् परब्रह्म उनके समक्ष आकर उपस्थित हुए। गोपाल-की-माँ उन्हें खींचकर ले आती हैं।

१६-२-१९६१

महाराज - कई लोग केवल यही कहते हैं, 'क्या कृपा है !' 'क्या कृपा है'! यह एक प्रकार से अकर्मण्यता है, काम से जी-चुराना है। शिक्षित लोग अगर बात-बात में ही कृपा कहते हैं, तो सन्देह होता है, लगता है पलायन करना चाहते हैं। एक भक्त कहते हैं – 'मेरे द्वारा चोरी करने में भी उनकी इच्छा है, अच्छा कार्य करने में भी उनकी ही इच्छा है।' उन सज्जन ने शायद वचनामृत नहीं पढ़ा है। आखें आँसू से भर जाती हैं ! समझो, यह कैसी कपटता है !

एक सज्जन कहते हैं कि यदि 'उनकी (भगवान की) इच्छा हो', तो उनके घर ठाकुर-पूजा होगी। देखो कैसा पलायनवादी है ! किसी कारण से रंचमात्र असुविधा देखकर ही वह कार्य छोड़ देगा और कहेगा कि उनकी इच्छा नहीं थी। उस भक्त ने क्या कहा था, जानते हो? चहारदीवारी गिर गई, तो यह ठाकुर की इच्छा से गिर गई। बात को समझो – ठाकुर की इच्छा का प्रभाव कहाँ तक चला गया! हर कार्य में भगवान की इच्छा-बोध करना, यह एक प्रकार की साधना है। उसे हर बात में प्रकट करने की क्या आवश्यकता है ! तुम प्रत्येक कार्य में भगवान की इच्छा देखने की चेष्टा कर रहे हो, यह उत्तम है, किन्तु टोले-मुहल्ले के लोगों को इसे बताते रहने की क्या आवश्यकता है? इसके अतिरिक्त, उस व्यक्ति का आचरण, चाल-चलन, लोक-व्यवहार देखकर समझ में आ जाता है कि उसके द्वारा कथित 'माँ की इच्छा' का अर्थ कहीं 'मेरी इच्छा' तो नहीं है। यदि वह सच्चा भक्त है, तो उसके पास जाकर तन-मन शीतल हो जाएगा।

भगवान क्या हमारे लिये पराए हैं? माता-पिता ने पालन-पोषण करके हमें मनुष्य बनाया है, यह सब उनकी कृपा है, क्या ऐसा किसी दिन सोचा है? भगवान की कृपा कैसी अद्भुत है ! बाबूराम महाराज आदि लोग कृपा की बात बतलाते थे। उसका अलग अर्थ है। उन लोगों ने कब, किससे, किस प्रसंग में क्या कहा है, उसे अच्छी तरह से देखो-समझो। सामान्य मनुष्य अपने को असहाय समझता है, ईश्वर की तुलना में अपने को इतना दीन-हीन समझता है कि वह बिलकुल यह समझ ही नहीं पाता कि उसे ईश्वर का सान्निध्य प्राप्त करने की कोई आशा है। तब ऐसे लोगों को साहस दिलाने के लिये ही महापुरुष लोग कहते हैं – ठीक है, तुम अपनी सामर्थ्य के अनुसार प्रयत्न करो, उससे ही वे कृपा करके तुम्हारा उद्धार कर देंगे, तुम्हें कुछ अधिक नहीं करना होगा।

हम अपने पूर्व कर्म-फलानुसार किसी सुयोग के आने या न आने पर उसे ईश्वर की इच्छा के सिर पर मँढ़कर निश्चिन्त हो जाते हैं। साधारण मनुष्य इतना आलसी है कि सोच-विचार करना नहीं चाहता, ईश्वर की इच्छा कहकर सन्तुष्ट हो जाना चाहता है। ऐसे लोगों का कैसा भाव होता है, जानते हो? वह कहता है – अरे ! मैं अभी सो रहा हूँ, तुम जब आवश्यकता पड़े, मुझे उठा देना। किन्तु भगवान

अत्याचारी नहीं हैं, सनकी नहीं हैं। जो जैसा चाहता है, उसे वैसा ही देते हैं। अधिक देकर उस पर अत्याचार नहीं करते। आवश्यकता और क्षमता से अधिक देने से ही तो अत्याचार हुआ !

यह संसार मानो एक प्रदर्शनी है। हम इस प्रदर्शनी को देखते हुए विचरण कर रहे हैं। सत्त्व, रज और तम, इन तीन तत्त्वों का खेल है। कितने ही प्रकार के दर्शनीय विषय हैं। जो अच्छा लगता है, उसे अधिक समय तक देखते हैं, जो खराब है, उसे छोड़ देते हैं। कुछ भी खरीदने की आवश्यकता नहीं है, केवल साक्षी रहो। कुछ लोग दुष्ट-स्वभाव के होते हैं, किन्तु उनके घर में एक प्रकोष्ठ होता है, वहाँ उनका पूजा-कक्ष होता है, वह ठाकुर-माँ के भाव से पूर्ण होता है। अन्य स्थान कूड़े-कचरे के समान व्यर्थ हैं, किन्तु वह पूजा-कक्ष ही उनका विशेष स्थान होता है, यद्यपि वे इस बात को नहीं जानते हैं। यह योगमाया का आकर्षण है। ठाकुर की चर्चा से दुष्ट व्यक्ति भी एक पृथक् व्यक्ति बन जाता है।

मुझे एक ऐसा व्यक्ति मिला था, जिसके साथ ढाका में बाबूराम महाराज की भेंट हुई थी। उसने मिशन की अनेक बातें, खाने-पीने की सुविधा आदि के बारे में बहुत-कुछ बताया था। अचानक ही उसने बताया, "आपके बाबूराम महाराज आए थे, हम लोगों ने मास्टर महाशय के साथ जाकर उन्हें प्रणाम किया था। अहा ! उन्होंने कैसा शीतल हाथ मेरे पीठ पर रखा था !" यह है योगमाया का आकर्षण। हाथ और शीतल कैसा ! बाबूराम महाराज ने कृपा की है। मृत्यु के समय इसी आनन्द का स्मरण करके उसकी मुक्ति होगी। शायद उसने पढ़ाई-लिखाई नहीं की हो, किन्तु कोई खराब कर्म भी नहीं किया।

महापुरुष महाराज ने एक व्यक्ति को संन्यास दिया, वह मेहतर का पुत्र था। वे लोग कृपालु थे। उन्होंने सोचा, ठीक है, प्रयत्न करके देखे न ! यह है कृपा। किन्तु कृपा क्या हर किसी के ऊपर होती है? ठाकुर आए, वे यदि किसी में भी थोड़ी भी चिंगारी देख लेते, तो उसे ऊपर उठाने का प्रयत्न करते थे, इसीलिए तो वे ईशान के घर गए। यदि वे कृपालु हैं, तो उन्होंने सब पर कृपा क्यों नहीं की? बात यह है कि आकाश में सूर्योदय हो रहा है। काँच साफ रहने पर सूर्य का प्रकाश उससे परावर्तित होता है। काँच सोचता है कि सूर्य कृपा करके मुझे प्रकाश दे रहे हैं। कृपा की स्थिति भी ठीक ऐसी ही है। **(क्रमशः)**

स्वामी आओ

सुखदराम पाण्डेय, लखनउ

जीवन के इस अन्ध कूप में, सूर्य रश्मि ले आओगे कब?
स्वामी सत्य बताओ, मुझको हाथ पकड़ अपनाओगे कब?
मात्र सेवियर्स का ही भाग्य था, या निवेदिता का ही मस्तक?
क्या मैक्लाउड का ही घर था, पायी जिसने तेरी दस्तक?
क्या गुडविन ही मित्र तुम्हारा, जिसने गहन निकटता पायी?
शरच्चन्द्र ही शिष्य एक क्या, जिस पर कृपा तुम्हारी आयी?
तुम आये बहुजनहिताय जब, कुत्ते तक को भी अपनाने,
मुझसे तीव्र रुखाई कैसी, क्या हम दोनों हैं अनजाने?
जब शरीर में नहीं रहूँगा, साथ आत्मा काम करेगी ।
वचन तुम्हारा यह अब बोलो, अमर संगिनी कहाँ मिलेगी?
यदि कहते हो मेरी-तेरी, एक आत्मा सबके भीतर ।
तो प्रत्यक्ष मुझे दिखाओ, कैसी लगती यह अवनी पर?
रामकृष्ण संग तुम ले आये, वन का वेदान्त ज्यों बस्ती में।
वैसे ही उपाय बतलाओ, पार उतरने का कश्ती में ।।
हम तेरे हैं, तुम्हें भी अपना हमें बनाने आना होगा ।
सबके दुख में दुखी महाप्रभु ! खोज मुझे भी पाना होगा ।।
मैं रोया हूँ औरों के संग, जंगल-जंगल तुम खोजी हो ।
अपहृत काम आदि के द्वारा, हम भूखों की तुम रोजी हो।।
स्वामी आओ! स्वामी आओ! साथ सभी सन्तों को लाओ ।
तृषित-क्षुधित हम सब बच्चों को, अपनाकर भवनिशा मिटाओ।।
स्वामी आओ ! स्वामी आओ ! स्वामी आओ! स्वामी आओ!

सूक्तियाँ

पुरुषोत्तम नेमा

सारे कष्ट स्वयं सह लेती किलकारी सुन जो सुख पाती ।
ममता माँ की सन्तानों पर आशीष-सुधा, सदा बरसाती ।।
प्रभु की बाँह पकड़कर काटे जिनने अपने दिन चढ़ाव के ।
बड़े प्रेम से बीतेंगे ही उनके बाकी दिन-उतार के ।।
जो भी कर्म करेगा उससे त्रुटियाँ होंगी कुछ कमी रहेगी ।
किन्तु निकम्मे की तुलना में बेहतर हैं कर्मठ व्यक्ति सभी ।।
जीवन-यात्रा सफल उन्हीं की जिनमें हो भरपूर तितिक्षा ।
धक्के सह लें, शान्ति न छोड़ें, हानि-लाभ सब हरि की इच्छा।।
घृणा-द्वेष के गर्त त्याग दें प्रेम-चाह के शिखर बनें ।
शिव में शुभ में रखें आस्था, खरता छोड़ें, प्रखर बनें ।।
जल के कारण ही जीवन है जल-बिन सभी मरुस्थल ।
मगंल, चाँद, धरा बन जाती अगर न होता जल ।।

निमाई की अद्भुत मित्रता

चैतन्य देव के बचपन का नाम निमाई था। बचपन से ही वे बहुत मेधावी थे। किन्तु मेधावी होने के साथ-साथ वे हँसी-मजाक, खेलकूद भी बहुत करते थे। उनका जन्म फाल्गुन मास की होली पूर्णिमा के दिन बंगाल के नवद्वीप में हुआ था।

उन दिनों नवद्वीप में न्यायशास्त्र की पढ़ाई बहुत होती थी। न्यायशास्त्र के साथ संस्कृत व्याकरण भी अच्छी तरह से पढ़ना होता था। उस समय आज की तरह छापेखाने नहीं थे। इसलिए आचार्य के पढ़ाने के बाद सुनकर लिख लिया जाता था और उसे कंठस्थ करना पड़ता था। निमाई की बुद्धि इतनी कुशाग्र थी कि विषय को एकबार सुनने के बाद उन्हें कंठस्थ हो जाता था।

निमाई के एक रघुनाथ नामक मित्र थे। निमाई और रघुनाथ नवद्वीप की एक न्याय-पाठशाला में पढ़ते थे। कहते हैं कि इस पाठशाला के पढ़े हुए छात्र संसार प्रसिद्ध हो गए थे। रघुनाथ जो बाद में पंडित रघुनाथ हुए, उन्होंने न्याय के विषय में एक 'दीधिति' नामक पुस्तक लिखी थी, जो पूरे भारत में प्रसिद्ध हो गई थी।

रघुनाथ की पहले से ही बहुत इच्छा थी कि वे एक ऐसा ग्रन्थ लिखें, जो पूरे भारत में प्रसिद्ध हो जाए। वे एक प्रसिद्ध नैयायिक बनना चाहते थे। न्यायशास्त्र के ज्ञाता को नैयायिक कहा जाता है। रघुनाथ समझते थे कि इस विषय में उनसे अधिक विद्वान कोई नहीं है।

एकबार रघुनाथ के गुरुजी ने उन्हें न्याय सम्बन्धी कोई प्रश्न दिया। पूरा दिन उस पर सोच-विचार के बाद उन्हें उसका हल मिला और उन्होंने गुरुजी के पास जाकर उसे बताया। उसके बाद वे भोजन बनाने चले गए। इधर निमाई उन्हें यहाँ-वहाँ ढूँढ़ने लगे। निमाई थोड़े नटखट भी थे। वे रघुनाथ के घर चले गए और देखा कि भोजन बनाने के लिए वे गीली लकड़ी को बार-बार फूँक रहे हैं, किन्तु लकड़ी जलती ही नहीं। फूँकते-फूँकते रघुनाथ की आँखें भी लाल हो गई थीं। निमाई ने उनसे पूछा कि आज उनकी दिनचर्या में गड़बड़ कैसे हुई।

रघुनाथ ने कहा कि उन्हें गुरुजी ने एक प्रश्न दिया था, उन्हें उसका हल निकालने के लिए पूरा दिन लगा, बस, उसी के लिए भोजन बनाने में देरी हो गई। निमाई को भी उत्सुकता हुई कि ऐसा क्या कठिन प्रश्न था, जिसे सोचने के लिए इतना समय लगा। निमाई ने उनसे वह प्रश्न पूछा। प्रश्न बताने पर निमाई ने उसका तुरन्त हल निकाल दिया। रघुनाथ को बड़ा आश्चर्य हुआ । वे तो समझते थे कि उनसे बड़ा पण्डित कोई है ही नहीं।

रघुनाथ उस समय न्यायशास्त्र के विषय में 'दीधिति' पुस्तक लिख रहे थे। उसकी बहुत चर्चा भी चल रही थी। किन्तु उन्होंने सुना कि निमाई भी कोई पुस्तक लिख रहे हैं। उन्हें थोड़ा भय लगने लगा कि कहीं निमाई की लिखी पुस्तक उनकी पुस्तक से अधिक प्रसिद्ध न हो जाए । इसलिए उन्होंने निमाई से वह पुस्तक दिखाने के लिए कहा। निमाई के मन में किसी के प्रति ईर्ष्या-द्वेष का भाव नहीं था। वे सभी से मित्रता रखते थे और सबका भला चाहते थे। उन्होंने भी रघुनाथ से कहा कि वे अगले दिन पुस्तक लेकर आएँगे।

अगले दिन नौका में पाठशाला से लौटते समय निमाई अपनी लिखी पुस्तक रघुनाथ को सुनाने लगे। निमाई अपनी धुन में रघुनाथ को सुना रहे थे। उन्होंने बहुत ही सुन्दर पुस्तक लिखी थी। उसे सुनने पर रघुनाथ को प्रसन्नता होनी चाहिए थी, किन्तु वे चुपचाप रोने लगे। निमाई को मालूम ही न था कि वे रो रहे हैं। जब उन्होंने रघुनाथ की ओर देखा, तो उन्होंने आश्चर्य से पूछा, "भाई, तुम रो क्यों रहे हो?"

रघुनाथ ने कहा, "भाई, मैंने बहुत परिश्रम कर उस विषय में एक पुस्तक लिखी है, किन्तु लगता है कि तुम्हारी पुस्तक पूरी हो जाने पर मेरी पुस्तक कोई नहीं पढ़ेगा।" यह सुनकर निमाई हँसते हुए बोले, "बस, इतनी सी बात।" ऐसा कहकर निमाई ने तुरन्त अपनी लिखी पुस्तक गंगाजी में फेंक दी। रघुनाथ को बुहत आश्चर्य हुआ कि निमाई ने अपने मित्र के लिए इतने परिश्रम से लिखी पुस्तक का त्याग कर दिया। OOO

दृढ़ निश्चय

स्वामी मेधजानन्द

हंगेरी सेना के एक जवान का नाम कैरोली टेकक्स था। वह पिस्तौल शूटिंग में निपुण था। उसका सपना था कि वह एक दिन ओलपिंक में स्वर्ण पदक जीतेगा। वह सभी राष्ट्रीय प्रतियोगिताओं में प्रथम आता था। उसका अचूक निशाना देखकर सबको ऐसा लगता था कि वह निश्चित ही स्वर्ण पदक जीतेगा। किन्तु १९३८ में एक दुर्घटना ने उसके सपनों को चूर कर दिया। सैन्य शिविर में प्रशिक्षण के समय उसके दाहिने हाथ में एक हाथगोला फट गया और उसका हाथ बुरी तरह घायल हो गया। उस समय कैरोली की आयु २८ वर्ष की थी। उसका हाथ इस तरह क्षतिग्रस्त हो गया कि वह भविष्य में कभी भी उस हाथ से पिस्तौल शूटिंग नहीं कर सकता था।

किन्तु जहाँ चाह, वहाँ राह। जिनका साहस हिमालय के समान दृढ़ रहता है, उन्हें संसार की कोई भी बाधा रोक नहीं सकती। विकट परिस्थितियों में साहसी लोगों की शक्ति और भी अधिक अभिव्यक्त होती है। कैरोली इस दुर्घटना से हताश नहीं हुआ। उसने सोचा कि उसके पास जो नहीं है, उसके लिए दुख करने के बजाय, उसके पास जो है, क्यों न उसे ही अपना सर्वश्रेष्ठ आलम्बन बनाया जाए। उसका दाहिना हाथ भले ही काम करने लायक न था। किन्तु वह अपने बायें हाथ को संसार का सर्वश्रेष्ठ हाथ बनाना चाहता था। वह चुपचाप बायें हाथ से पिस्तौल शूटिंग का अभ्यास करने लगा। किसी को इस बात का पता नहीं था कि कैरोली अपने बायें हाथ से निशानेबाजी का अभ्यास कर रहा है।

एक साल अभ्यास करने के बाद वह १९३९ में हंगेरी की नैशनल चैपिंयनशिप में गया। वहाँ उस देश के श्रेष्ठ प्रतिस्पर्धी थे। उन्हें लगा कि कैरोली उन सबका उत्साह बढ़ाने आया है। किन्तु कैरोली ने कहा कि वह किसी का उत्साह बढ़ाने नहीं, मुकाबला करने आया है। वहाँ उपस्थित लोगों को यह मजाक लग रहा था, किन्तु लोगों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा, जब कैरोली उस प्रतियोगिता में विजयी हुआ। पूरे देश में कैरोली के पराक्रम की चर्चा होने लगी।

किन्तु भाग्य ने कैरोली का पीछा अभी भी नहीं छोड़ा था। कैरोली ने १९४० के ओलपिंक में भाग लेने की पूरी तैयारी कर ली थी, किन्तु विश्वयुद्ध के कारण ओलपिंक नहीं हुआ। सबको लगा कि कैरोली का ओलपिंक जीतने का सपना, मात्र सपना बनकर ही रह जाएगा। कैरोली हार माननेवाला नहीं था। उसने अपना अभ्यास जारी रखा। वह १९४४ के ओलपिंक की तैयारी करने लगा। किन्तु उसका भाग्य उसकी और अधिक परीक्षा लेना चाहता था, इस बार भी विश्वयुद्ध के कारण ओलपिंक नहीं हुआ। कैरोली दस साल से निशानेबाजी का अभ्यास केवल इसीलिए कर रहा था कि वह एक-न-एक दिन स्वर्ण पदक जीतेगा।

पराजय, निराशा नाम के शब्द शायद उसके सिस्टम में नहीं थे। उसने फिर से १९४८ के ओलपिंक की तैयारी की। उस समय कैरोली की आयु ३८ वर्ष की थी। जहाँ अन्य श्रेष्ठ प्रतियोगी अपने श्रेष्ठ संसाधनों के साथ श्रेष्ठ तैयारी कर आए थे, वहीं कैरोली ने अपने एकमात्र बायें हाथ से पूरे संसार को चौंका दिया। अन्तत: वह ओलपिंक का स्पर्णपदक जीत गया।

बहुत बार कोई कार्य उत्साह में आरम्भ तो कर लिया जाता है, किन्तु जब वह कठिन प्रतीत होता है, तो उसे बीच में ही छोड़ दिया जाता है। अपने जीवन के प्रत्येक छोटे-बड़े कार्यों में हम कुछ सिद्धान्त अपने लिए बना लेते हैं। किन्तु कभी-कभी आलस्य, प्रलोभन अथवा परिस्थितिवश हम उनका व्यतिक्रम करते हैं। जैसे कि हमने एक निश्चय किया कि हम सुबह जल्दी उठकर व्यायाम करेंगे। प्रारम्भ के कुछ दिन तो यह दिनचर्या ठीक चलती है, किन्तु एक सुबह मन में ऐसा विचार आता है कि आज थोड़ा-सा आराम कर लिया जाए और वहीं से हमारी गाड़ी धीरे-धीरे पटरी से उतर जाती है। छोटे-छोटे कार्यों को भी पूर्ण करने से हमारा मनोबल बढ़ता है।

जीवन में सफल होने के लिए दृढ़-निश्चय की आवश्यकता है। चाहे कितनी भी पर्वताकार बाधाएँ आएँ, कितनी बार भी हम अपने पथ से फिसल जाएँ, हमें पुन: दुगुनी ऊर्जा के साथ उठना है। जहाँ निश्चय की दृढ़ता होती है, वहाँ सब कठिनाइयाँ आसान हो जाती हैं। लक्ष्य जितना महान होता है, बाधाएँ उतनी ही अधिक होती हैं। यदि हमने किसी कार्य को पूरा करने का संकल्प लिया है, तो उसे किसी भी स्थिति में पूर्ण करना चाहिए। ○○○

स्वामी विवेकानन्द के प्रिय गुडविन (१)

प्रव्राजिका व्रजप्राणा

(स्वामी विवेकानन्द की ग्रन्थावली का अधिकांश भाग गुडविन द्वारा लिपिबद्ध व्याख्यान-मालाएँ हैं । उनकी आकस्मिक मृत्यु पर स्वामीजी ने कहा था, ''गुडविन का ऋण मैं कभी चुका नहीं सकूँगा।... उसकी मृत्यु से मैं एक सच्चा मित्र, एक भक्तिमान शिष्य तथा एक अथक कर्मी खो बैठा हूँ। जगत् में ऐसे अति अल्प लोग ही जन्म लेते हैं, जो परोपकार के लिये जीते हैं। इस मृत्यु ने जगत् के ऐसे अल्पसंख्यक लोगों की संख्या एक और कम कर दी है।'' गुडविन के संक्षिप्त जीवन का अनुवाद पाठकों के लाभार्थ यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है । – सं.)

१८९८ के जून महीने की वह शुभ्र प्रभात थी, जब अलमोड़ा में स्वामीजी ने गुडविन की मृत्यु का समाचार सुना। स्वामीजी अपने पाश्चात्य शिष्यों – निवेदिता, श्रीमती ओली बुल, जोसेफीन मैक्लाउड के साथ इस शान्त पर्वतीय क्षेत्र में निवास कर रहे थे।

स्वामीजी उस समय किसी स्थान पर गए हुए थे, जब इस दुखद संवाद का तार आया – *कल रात गुडविन की उटकमण्ड में मृत्यु हो गई है*। स्वामीजी जब अगले दिन अलमोड़ा पहुँचे, तब पहले से ही उन पर विषाद की छाया दिख रही थी। उन्होंने थोड़ी देर पहले ही पवहारी बाबा के महाप्रयाण का समाचार सुना था। स्वामीजी इस समाचार से शोकाकुल थे । इसलिए गुडविन की मृत्यु का समाचार उन्हें अगले दिन तक नहीं सुनाया गया।

निवेदिता से यह समाचार सुनने के बाद स्वामीजी ने कुछ विशेष प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की। वे अपने शिष्यों के साथ बैठकर धीरे-धीरे शान्त मन से बातें करने लगे। किन्तु कुछ ही दिनों में स्वामीजी के लिए उस स्थान में रहना असह्य हो गया, जहाँ उन्होंने यह दुखद समाचार सुना था। अपनी इस दुर्बलता के बारे में उन्होंने बताया कि वहाँ गुडविन की आकृति निरन्तर उनके मन पर छाई रहती है। उन्होंने कहा कि इस प्रकार उस स्मृति से भाराक्रान्त हो जाना दुर्बलता है और मनुष्य को इस भ्रम पर विजय पाकर यह जान लेना होगा कि दिवंगत आत्माएँ पूर्ववत् ही हमारे निकट उपस्थित हैं तथा उनकी अनुपस्थिति और बिछोह कल्पना मात्र है। किन्तु उनका यह बौद्धिक तर्क उनके हृदय पर काबू नहीं पा रहा था। स्वामीजी जिन्हें स्नेहपूर्वक 'मेरा निष्ठावान गुडविन' कहते थे, उनकी मृत्यु के आघात को वे तर्कबुद्धि के द्वारा कम नहीं कर पा रहे थे। निवेदिता के सामने वे जगत को परिचालित करनेवाले 'सगुण ईश्वर' के अस्तित्व के विषय में कठोर शब्द व्यक्त करने लगे। गुडविन की मृत्यु से वे उस सत्ता के प्रति उपहासपूर्वक तिरस्कार करने लगे, ''गुडविन को मार डालने के लिए ऐसे ईश्वर के विरुद्ध युद्ध छेड़ना और उसे समाप्त कर डालना क्या हमारा अधिकार और कर्तव्य नहीं है? अहा! गुडविन यदि बचा रहता, तो कितने सारे कार्य कर पाता!''

गुडविन की मात्र सताइस वर्ष में ही मृत्यु हो गई थी। स्वामीजी के जीवन में उनका अचानक और अप्रत्याशित आगमन हुआ और उनका प्रस्थान भी वैसे ही आकस्मिक हुआ।

६ दिसम्बर, १८९५ को स्वामीजी 'ब्रिटेनिका' जहाज से न्यूयार्क उतरे और पुन: वहाँ की ठिठुरती ठण्ड से उनका परिचय हुआ। अगस्त के कुहासे-भरे महीने में न्यूयार्क छोड़ने के बाद वे पहले यूरोप रवाना हुए और उसके बाद इंग्लैण्ड गए। इंग्लैण्ड में स्वामीजी को अपने कार्य में असाधारण सफलता प्राप्त हुई। स्वामीजी ने आलासिंगा को लिखा था, ''मैं स्वयं भी इस पर विस्मित हूँ।'' किन्तु उनकी अनुपस्थिति में उनका अमेरिका का कार्य शिथिल हो गया था। यद्यपि स्वामीजी के अमेरिकी संन्यासी शिष्य कृपानन्द और अभयानन्द निष्ठापूर्वक वेदान्त-प्रचार के प्रयत्नों में जुटे थे, किन्तु कुल मिलाकर उनके ये प्रयत्न असफल रहे। स्वामीजी को अमेरिका आने के लिए पत्रों द्वारा विनती की गई। इस प्रार्थना को स्वीकार करते हुए उन्होंने पुन: समुद्र यात्रा की और एटलान्टिक महासागर के पार पहुँचे। स्वामीजी के आगमन के समय मौसम अति शीत था, किन्तु उनके सन्देश ने जिस उत्साह की सृष्टि की, उसकी मात्रा उससे कई गुना अधिक थी। उस दिन दिसम्बर की भोर में सम्भवत: कृपानन्द जी स्वामीजी से जहाज पर मिलने गए थे। वहाँ से न्यूयार्क के एक निवास-स्थान में उन्हें ले जाया गया, जहाँ उनके लिए दो बड़े कमरे किराए पर लिए गए थे। इन कमरों में १५० लोगों के बैठने की क्षमता थी और शीघ्र ही इनका पूरी तरह से उपयोग शुरू किया गया। स्वामीजी ने भी शीघ्र ही इस नए वातावरण को अपने अनुकूल बना दिया। कुछ ही दिनों में उन्होंने स्वयं को पूरे मन-प्राण से कठिन कार्यों में झोंक दिया।

स्वामीजी के सभी व्याख्यान पूर्णरूपेण तात्कालिक होते थे। वे उन्हें सुरक्षित रखने का कोई प्रयास नहीं करते थे, किन्तु स्वामीजी के शिष्य जानते थे कि उनके उपदेश बहुमूल्य हैं। उन्हें भय था कि यदि इन उपदेशों को लिपिबद्ध नहीं किया गया, तो वे सदैव के लिए लुप्त हो जाएँगे। स्वामीजी के ऐसे अनेक शिष्य थे, जिन्होंने उनके वेदान्त विषयक व्याख्यानों को साधारण समझकर मात्र सुनना-भर शुरू किया था, किन्तु बाद में उनके विचार और भावों में आमूलचूल परिवर्तन हो गया था। इन सीधे-सरल लोगों को मात्र एक घण्टे की कालावधि में एक ऐसे महापुरुष के द्वारा सर्वोच्च सत्य के उपदेश प्राप्त हो जाते थे, जो आध्यात्मिकता में दृढ़ प्रतिष्ठित थे। स्वामीजी भी यह सत्य इस प्रकार पाश्चात्य लोगों के सम्मुख प्रस्तुत करते थे, जिससे वे उसे समझ सकें और आत्मसात् कर सकें।

अत: न्यूयार्क वेदान्त सोसायटी के पदाधिकारियों ने स्वामीजी के व्याख्यानों को लिपिबद्ध करने के लिए एक आशुलिपिक नियुक्त करने का निश्चय गया। १२ दिसम्बर, १८९५ को न्यूयॉर्क के दो समाचार-पत्र 'हेराल्ड' और 'वर्ल्ड' में इस हेतु एक छोटा-सा विज्ञापन प्रकाशित हुआ : *आवश्यकता है – व्याख्यानों को लिपिबद्ध करने हेतु एक तीव्रगति-आशुलिपिक की, जो प्रति सप्ताह कुछ घण्टे कार्य कर सके। २२८ वेस्ट, ३९ स्ट्रीट पर आवेदन भेजें।*

आवेदकों ने निश्चय ही तुरन्त पत्र भेजे होंगे, क्योंकि उपरोक्त विज्ञापन केवल एक ही दिन प्रकाशित हुआ था। विज्ञापन में छपे ये तीन-चार सामान्य वाक्य ही जे. जे. गुडविन को स्वामीजी की सन्निधि में लाने में कारणीभूत हुए।

गुडविन के कार्यग्रहण के पहले दो अन्य स्टेनोग्राफर ने भी प्रयत्न किया था, किन्तु वे असफल रहे। उनमें से प्रथम स्टेनोग्राफर तो सम्भवत: स्वामीजी की तेज वक्तृता से तालमेल न बैठा सके और दूसरे स्वामीजी के व्याख्यानों की विषय-वस्तु से अनभिज्ञ थे और ठीक-ठीक प्रतिलेखन न कर सके। प्रथम असफल स्टेनोग्राफर सम्भवत: स्वामीजी के अमेरिकी शिष्य स्वामी कृपानन्द थे। स्वामी कृपानन्द ने अक्तूबर, १८९५ को ओली बुल को एक पत्र लिखा था। उसमें वे न्यूयॉर्क के किराए के मकान का उल्लेख करते हैं, जो उन्होंने स्वामीजी और स्वयं के लिए लिया था। वे लिखते हैं, "...मैं बहुत परिश्रम कर रहा हूँ। शॉर्टहेन्ड में रफ्तार बढ़ाने के लिए मैंने पैन बिजनिस कॉलेज में १२ डालर के शुल्क पर २० पाठवर्गों वाला पाठ्यक्रम शुरू किया है। प्रतिदिन एक पाठवर्ग सीखकर उसका चार-पाँच घण्टे अभ्यास करता हूँ।"

कृपानन्द की कठिन मेहनत और सद्भावना इस कार्य के लिए पर्याप्त नहीं थी। किन्तु इस कार्य के लिए योग्य व्यक्ति मिलना प्राय: असम्भव ही था। कुशल स्टेनोग्राफर का मिलना एक बात और उसके साथ उसकी कुछ आध्यात्मिक अन्तर्दृष्टि हो और वह अल्प पारिश्रमिक ग्रहण करे, यह एक अलग ही विषय था।

इस विकट परिस्थिति के समाधान हेतु पच्चीस वर्षीय अंग्रेज जे. जे. गुडविन का आगमन होता है। स्वामीजी के पास आने वाले ये युवक दिखने में सुन्दर, सजीली वेशभूषा, सुव्यवस्थित केश और मोटी मूछोंवाले थे। उनके चित्र में वे संवेदनात्मक नेत्र, अन्वेषक दृष्टि और गम्भीर मुखाकृति वाले दिखाई देते हैं। उनके मुख पर प्रशस्त ललाट और सुदृढ़ जबड़े परिलक्षित होते हैं।

गुडविन ने छोटे-मोटे स्टेनोग्रेफी के काम के लिए २२८ वेस्ट, ३९ स्ट्रीट में आवेदन भरा। वे ऐसे काम के अभ्यस्त थे। उस समय स्टेनोग्रेफी का काम दक्षतापूर्ण माना जाता था, किन्तु अपेक्षाकृत उसका पारिश्रमिक कम था। न्यूयॉर्क शहर में आशुलिपिक का वेतन प्रति सप्ताह १० से १८ डॉलर था, किन्तु न्यूयॉर्क वेदान्त सोसायटी के पदाधिकारियों ने सम्भवत: गुडविन को उससे कम का प्रस्ताव दिया होगा। यद्यपि इस वेतन पर व्यक्ति का सामान्य गुजारा चल सकता था, किन्तु आर्थिक उन्नति करना सम्भव नहीं था।

गुडविन ने जब इस पद के लिए आवेदन किया, तब उनकी आयु २५ वर्ष थी, किन्तु वे ११ वर्षों से पत्रकार के रूप में कार्य कर रहे थे। उन्होंने यह कार्य अपने पिता जोशया से सीखा था। जोशया गुडविन का जन्म १८१७ में हुआ था। उनके पिता रेवरण्ड जोशया गुडविन इंग्लैण्ड के योर्कशायर में वैसलिन (जौन वैसली द्वारा संस्थापित मैथोडिस्ट गिरजाघर के सदस्य) मन्त्री थे। जोशया गुडविन किशोरावस्था में ही दक्ष आशुलिपिक बन गए थे, जो उस समय असाधारण और सम्मानित निपुणता मानी जाती थी। सम्भवत: जोशया ने १८३७ में इंग्लैण्ड में प्रचलित पिट्समैन सिस्टम आफ शार्टहैन्ड में निपुणता प्राप्त की होगी। पिट्समैन सिस्टम ने फोनेटिक सिस्टम की रचना कर आशुलिपि में आमूल परिवर्तन किया था। इस पद्धति में भाषाध्वनि को वैज्ञानिक प्रक्रिया से व्यवस्थित कर संकेतीकरण द्वारा द्रुत अनुलेखन को आसान कर दिया था। निपुण आशुलिपिक ९९ प्रतिशत दक्षता से प्रतिमिनट २०० शब्द का लेखन कर लेते थे।

(क्रमश:)

ईशावास्योपनिषद (३)

स्वामी आत्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्दजी महाराज रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम के संस्थापक सचिव थे। उन्होंने यह प्रवचन संगीत कला मन्दिर, कोलकाता में दिया था। – सं.)

वैसे तो कहते हैं कि ग्यारह सौ अठाइस उपनिषद हुए। माने ऋग्वेद की एक-एक शाखा के लिए एक-एक उपनिषद। परन्तु आजकल करीब दो सौ उपनिषद उपलब्ध हैं। एक तो अकबर के समय का है, उसका नाम है 'अल्लाहोपनिषद'। किन्तु एक सौ आठ उपनिषद ऐसे हैं, जिनके सम्बन्ध में ऐसी मान्यता है कि ये महत्त्वपूर्ण हैं। इन एक सौ आठ उपनिषदों में दस उपनिषदों पर भगवान शंकराचार्यजी का भाष्य है। एक श्वेताश्वतर है ग्यारहवाँ और उसके सम्बन्ध में विवाद है कि आदिशंकराचार्य ने ही भाष्य लिखा अथवा परवर्ती शंकराचार्य ने भाष्य लिखा, पर दस उपनिषदों के सम्बन्ध में कहा जाता है कि आदिशंकराचार्य ने भाष्य लिखा, इसमें कोई विवाद नहीं है। शंकराचार्य ने सबसे प्रथम भाष्य किसी उपनिषद पर यदि लिखा, तो वह है ईशावास्योपनिषद। इस दृष्टि से भी इसका बहुत महत्त्व है। इसमें हम देखते हैं कि एक शान्ति पाठ है। यह उपनिषदों की परम्परा है कि प्रारम्भ में शान्ति पाठ और अन्त में शान्ति पाठ रहता है। प्रारम्भ में शान्ति पाठ मन को समाहित करने के लिये है। जैसे हम स्वाभाविक रूप से यह मानकर शान्ति पाठ करते हैं कि शान्ति पाठ में जो कहा जा रहा है, उसी का विस्तार उपनिषद में किया जायेगा। जब हम अन्त में शान्ति पाठ करते हैं, तो मानो मन हमारा समाहित हो गया है, ज्ञान का उपदेश मुझे प्राप्त हो गया है, एक कृतकृत्यता का भाव आता है। इसमें जो शान्ति पाठ है, वह बहुत प्रसिद्ध है –

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।।
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

यह शान्ति पाठ है। इस शान्ति पाठ के मन्त्र का अर्थ मानो उपनिषद के अठारहवें मंत्र में व्याप्त है। मानों इस मंत्र का विशदीकरण हुआ है, ऐसा कहा जा सकता है। इस श्लोक का हम प्रत्येक दिन पाठ करते हैं या देखते हैं, कई बार ॐ ॐ का उच्चारण करते हैं। आप जानते हैं यह ॐ ब्रह्म का वाचक है, यह शब्द ब्रह्म कहलाता है। ॐ प्रणव का प्रतीक है, यह ब्रह्म का नाम है। उस सत्य का सबसे सुंदर अगर कोई नाम होगा तो वह ॐ है। ॐ के द्वारा मानों शब्द की जो प्रक्रिया है, ध्वनि की जो प्रक्रिया है, वह अ उ म् की प्रक्रिया द्योतित होती है। माण्डूक्य उपनिषद में इस ॐ शब्द पर बहुत विचार किया गया है।

ॐ पूर्णमदः – माने वह पूर्ण है। पूर्णमिदं – माने यह पूर्ण है। पूर्णात् पूर्णमुदच्यते – उस पूर्ण से यह पूर्ण बाहर निकला है। पूर्णस्य पूर्णमादाय – पूर्ण में से पूर्ण बाहर निकल गया, तो कितना बचा? क्या शून्य बचा? कहते है नहीं, पूर्णमेव अवशिष्यते – पूर्ण ही शेष बचता है। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः, यह त्रितापों की शान्ति है, दैहिक, दैविक, आध्यात्मिक, ये जो त्रिविध ताप हैं, उनकी शान्ति की बात कही गयी है। दैहिक जिसे आधिभौतिक कहा गया, प्रकृति आदि का आधिदैविक ताप और आध्यात्मिक ताप है, इन्हीं त्रितापों की शान्ति की कामना इस शान्ति पाठ में की गयी है।

अब यह जो कहा गया है वह पूर्ण है, यह पूर्ण है। वह माने ब्रह्म और यह माने जिसे हम प्रचलित भाषा में संसार कहते हैं। ब्रह्म से संसार निकला है, तो कैसे निकला है? वह जो पूर्णस्वरूप ब्रह्म है और यह जो निकला हुआ संसार है यह भी पूर्णस्वरूप है। पूर्ण से ही पूर्ण निकला है, यह जो सिद्धान्त है, इसे जिन्होंने गणित शास्त्र पढ़ा है, वे अधिक अच्छा समझ सकते हैं।

गणित में infinite का एक concept है। ∞ अनन्त की धारणा है और ∞ की धारणा में कहा गया है कि ∞ में अगर ∞ जोड़ो तो ∞ ही रहेगा। ∞ से अगर ∞ निकाल लो, तो ∞ ही रहेगा, ∞ में यदि ∞ का गुणा करो तो ∞ ही रहेगा। यह गणित का सिद्धान्त है। तो जो ∞ है, यदि उसमें हम ∞ निकालें या ∞ जोड़ें तो, वह ∞ ही रहेगा। जो निकला है, वह भी ∞, जो बचा है, वह भी ∞। दो नहीं है।

दो अनन्त की यह कल्पना गणित शास्त्र में भी नहीं है।

यदि ∞ दो हो गये तो, एक ∞ दूसरे ∞ को बाधित करेगा, एक अनन्त दूसरे अनन्त को कहीं पर जाकर के सीमाबद्ध करेगा। इसलिए हम दो अनन्त की कल्पना कर ही नहीं सकते। यदि दो अनन्त हैं, तो एक ∞ कहाँ से शुरू होता है और दूसरा कहाँ से होता है? जैसे ही मन में यह प्रश्न आया, वहाँ पर अनन्त का बाधित होना शुरू हो गया। अनन्त यदि बाधित होता है, तो फिर वह अनन्त कैसा है?

इसलिए एक ही अनन्त है। यह जो संसार है, उसी ब्रह्म से निकला है और निकलने के बाद भी पूर्ण स्वरूप ही है। मनीषियों ने इसे भिन्न-भिन्न दृष्टियों से देखा है। विवर्तवाद की दृष्टि से देखा गया है, विकासवाद की दृष्टि से देखा गया है, परिणामवाद की भी दृष्टि से देखा गया है। विवर्तवाद की दृष्टि से देखना है, जैसे हमने रस्सी पर साँप देखा। अब रस्सी पड़ी है, हमने साँप देखा, यह है तो रस्सी, साँप उसी रस्सी से निकला है। आप इस अर्थ को उस पर लगाने की चेष्टा कीजिए, जैसे साँप को पूर्ण की दृष्टि से ले लें। साँप कितना है? उतना ही है जितनी रस्सी है। यदि रस्सी पूर्ण है, तो साँप भी पूर्ण ही है। साँप रूपी पूर्ण किसमें से निकला है? रस्सीरूपी पूर्ण में से साँप निकला है। तो बचा कितना है? तो कहा पूर्ण ही बचा है। यह जैसे है, वैसे ही है। इसको हम कहते हैं विवर्त। यह संसार इसी दृष्टि से निकला है, इसे विवर्त कहते हैं। वस्तुत: ब्रह्म ही है, ब्रह्म ही इन रूपों में प्रतिभासित हो रहा है। यह जो प्रतिभासित होना है, उसी को विवर्त कहते हैं। कहीं कोई परिणाम नहीं हुआ, रस्सी में परिणाम नहीं हुआ, रस्सी बदली नहीं। रस्सी जैसी है, वैसी ही है, पर साँप दिखाई देता है। ठीक इसी प्रकार ब्रह्म जैसा है, वैसा ही है, पर संसार दिखाई देता है। यह कैसे दिखाई दे रहा है? इस प्रश्न के उत्तर में कहते हैं कि विवर्त के कारण ऐसा दिखाई दे रहा है। यह रस्सी साँप के रूप में कैसे दिखाई दे रही है? इस कैसे का क्या उत्तर है? कहते हैं कि भ्रम के कारण यह रस्सी साँप के रूप में दिखाई दे रही है। वैसे ही भ्रम के कारण वही ब्रह्म नाना रूपों में प्रतिभासित होता है। यह विवर्त की दृष्टि से उत्तर है।

विकास की दृष्टि से क्या होगा? जैसे उदच्यते, उद् अंच। उद् माने निकलना, बाहर निकलना, अंच माने प्रकट होना, तो उदंच एक विकास का सूत्र है। इस शान्ति पाठ में उस विकास के सूत्र को भी देखेंगे।

गुरु-शिष्य बैठे हैं। गुरु शिष्य के प्रति उपदेश कर रहे हैं। दोनों ने पहले शान्ति मंत्र का पाठ किया। उसके बाद गुरु ने उपदेश दिया। यह पहला मंत्र है, इसे हम उपदेश वाक्य कहते हैं। यहाँ पर वे उपदेश देते हैं। यहाँ पर हमारे समक्ष वे ज्ञान को, सिद्धान्त को रख देते हैं। दूसरे मंत्र में वे बताते हैं कि कैसे उसे कर्म में, व्यवहार में उतारें। पहला मन्त्र सिद्धान्त वाक्य है –

ॐ ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम्।।१।।

– यह सारा का सारा ईश आवास, ईश्वर का आवास, स्थान है या फिर ईशावास्यम्, यह सारा भगवान के द्वारा ढकने योग्य है। एक अर्थ यदि तृतीया विभक्ति में करें, तो ईशावास्यम् का अर्थ होता है ईश्वर के द्वारा आच्छादित करने योग्य है। यदि इसको षष्ठी में लें, तो यह ईश्वर का आवास स्थान है। तुम्हारे मन में किसी के धन के लिए लोभ न हो। इस श्लोक को तीन भागों में बाँट दिया गया है। एक तो यहाँ परमात्मा का निरूपण किया गया। दूसरा जो नीचे का उत्तरार्ध का प्रथम अंश है, उसमें स्वात्मा और तीसरा अंश है परात्मा। स्वात्मा, परात्मा और परमात्मा, इन तीनों का सम्बन्ध कैसा हो? ऊपर के प्रथमार्ध में कहा गया है कि ईश्वर, वह परमात्मा सबके भीतर है। सब कुछ को परमात्मा से ढँककर देखो। उसी को त्याग कहा गया है। यह विलक्षण है। पहले त्याग का भाव रहा होगा, जब चिन्तन का उदय हुआ, तो संसार को छोड़ दिया। संसार को माया-मरीचिका कहा गया। हमारे यहाँ बहुत समय तक प्रचलित रहा कि यह संसार मिथ्या है, माया है, मरुमरीचिका है, इसे छोड़ो। किन्तु यहाँ पर त्याग का एक दूसरा दृष्टिकोण प्रदान करते हैं। इस संसार में रहकर के संसार में जो कुछ दिखाई देता है, उसको ईश्वर का वास स्थान यदि मानों, तो यही त्याग है। यदि भगवान से हम इसे ढँककर के देखें, तो त्याग है और इसे त्याग के द्वारा भुंजीथा – भोग करो। यह संसार ईश्वर का है, इस रूप में ग्रहण करो। मा गृध: कस्यस्विद्धनम् – किसी के धन का लालच मत करो। इस प्रकार प्रथम परमात्मा का निरूपण किया। दूसरा त्याग के द्वारा भोग करो, स्वात्मा अपनी आत्मा का और तीसरा परात्मा के सम्बन्ध में कि दूसरे के धन का लालच मत करो। यह तीनों का सम्बन्ध है ! **(क्रमश:)**

आध्यात्मिक जिज्ञासा (२७)

स्वामी भूतेशानन्द

(ईश्वरप्राप्ति के लिये साधक साधना करते हैं, किन्तु ऐसी बहुत-सी बातें हैं, जो साधक की साधना में बाधा बनकर उपस्थित होती हैं। साधक के मन में बहुत से संशयों का उद्भव होता है और वे संशय उसे लक्ष्य पथ में भ्रान्ति उत्पन्न कर अभीष्ट पथ में अग्रसर होने से रोकते हैं। इन सबका सटीक और सरल समाधान रामकृष्ण संघ के द्वादश संघाध्यक्ष पूज्यपाद स्वामी भूतेशानन्द जी महाराज ने दिया है। इसका संकलन स्वामी ऋतानन्द जी ने किया है, जिसे हम 'विवेक ज्योति' के पाठकों हेतु प्रकाशित कर रहे हैं। – सं.)

प्रश्न – महाराज! आपसे ही सुना था, मठ में रहते समय प्रारम्भिक दिनों में आप एक बार बहुत अस्वस्थ हो गये थे। वह कब हुआ था?

महाराज – महापुरुष महाराज के समय एक बार मैं बहुत बीमार हो गया था। चिकित्सकों ने आशा छोड़ दी थी। सभी जानते थे कि अब मैं नहीं बचूँगा। गंगेशानन्दजी ने जाकर महापुरुष महाराज को कहा, ''महाराज, वह तो गया।'' महापुरुष महाराज उठकर खड़े हो गये। गम्भीर मुख-मुद्रा। उन्होंने हाथ जोड़कर ठाकुर की ओर देखकर प्रार्थना करते हुये कहा, ''देखो, ठाकुर की क्या इच्छा है।'' किन्तु जाना नहीं हुआ। वह १९२८ की घटना है और यह १९८९ है। ६१ वर्ष बीत गये। लगता है, ये तो अभी उस दिन की बात है। किन्तु मुझे होमियोपैथी दवा ने बचाया था। शरीर बिलकुल टूट गया था। मानो बिस्तर के साथ मिल गया था। अनंग महाराज (स्वामी ओंकारानन्द जी) मुझे गोद में उठाकर एक बिस्तर से दूसरे बिस्तर पर सुला देते थे। उन्होंने मेरी बहुत सेवा की थी। प्रिय महाराज ने मुझसे पूछा, ''क्यों रे! तुम्हें किसको देखने की इच्छा होती है?'' उनलोगों ने तो सोचा था कि अब मैं जीवित नहीं बचूँगा। उन्होंने पूछा, ''क्या घर में सूचना दें?'' मैंने कहा, नहीं। जब मैं अच्छा था, तब सूचना नहीं दी, अब तो मरने जा रहा हूँ। अब सूचना देने की आवश्यकता नहीं है। मेरे स्वस्थ हो जाने के बाद अनंग महाराज ने एक बहुत महत्त्वपूर्ण बात कही थी। उन्होंने कहा था ''अस्वस्थ होने के बाद सबकी सेवा के द्वारा स्वस्थ हो जाने पर संघ के प्रति प्रेम, आकर्षण और बढ़ जाता है।'' ठीक वैसा ही है। बहुत कृतज्ञता का बोध होता है।

– महाराज, कौन-सी बीमारी हुई थी?

महाराज – पेचिश

प्रश्न – महाराज! ठाकुर ने एकान्तवास की बात बहुत कही है। हमलोगों की वर्तमान जीवन-शैली में निर्जनवास कैसे सम्भव है?

महाराज – ठाकुर ने निर्जनवास की बात कही है, यह सत्य है, किन्तु सर्वदा नहीं, बीच-बीच में। सच्ची बात है कि निर्जनवास और तपस्या के लिये मन को पहले तैयार करना पड़ता है। तब निर्जनवास या तपस्या फलदायी, सार्थक होती है। एक बार तपस्या के लिये अवकाश मिला। महापुरुष महाराज को बताने पर वे बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा, ''जाने के पहले जितने दिन यहाँ हो, खूब जप-ध्यान करो। तब तपस्या में जाकर ठीक-ठीक समय का सदुपयोग कर सकोगे।'' मैंने वैसे ही किया। वे लोग (ठाकुर की सन्तान) मुझे हमेशा बहुत उत्साहित करते थे। साधन-भजन के लिये कितने प्रकार से उत्साहित करते थे। कभी भी 'नहीं' नहीं कहा।

प्रश्न – महाराज! जब हमलोग गृह-त्याग कर आये थे, तब जैसा वैराग्य था, देख रहा हूँ कि वह दिन-पर-दिन कम हो रहा है। ऐसा क्यों होता है और इसका उपाय क्या है?

महाराज – जब हमलोग गृह-त्याग कर आते हैं, तब वैराग्य की तीव्रता का जो परिमाण रहता है, वह धीरे-धीरे कम होता जाता है, वैसा नहीं रहता है। यह सत्य है। यह देखा जाता है। प्रत्येक साधक का यह एक ही अनुभव है। इसका क्या कारण है? इसका कारण है, मन का यही स्वभाव है। मन की ऐसी ही गति है। कभी ऊँचा रहता है, कभी नीचे चला जाता है। उत्थान-पतन ही मन का स्वभाव है। जब हमलोग घर छोड़कर आते हैं, तब नया वैराग्य रहता है। किन्तु धीरे-धीरे वह आकर्षण कम हो जाता है। बिलकुल कम नहीं हो जाता है। फिर बहुत दिनों बाद धीरे-

धीरे बढ़ता हुआ दिखता है। वैसा ही मन का स्वभाव है। इसे जानकर बात को समझ लेना होगा। भय या हताशा की कोई बात नहीं है। मन केवल नीचे की ओर ही जाता है, ऐसी बात तो नहीं है, वही मन पुन: ऊपर भी उठता है। जब मन नीचे जाता है, तब हो सकता है कि समझ में नहीं आया, किन्तु जब समझ में आ गया, तब उसे ऊपर उठाना होगा। हमलोगों को सदा सावधान रहना होगा। जैसे ठाकुर ने कलम जैसे ढाल रास्ते का और किला में जाने का उदाहरण दिया है। मैं भी किला में गाड़ी से गया था। हमलोग इतने नीचे गये कि जाते समय पता ही नहीं चला। नीचे से पेड़ कितने ऊपर दीख रहे हैं, समझ ही नहीं सके। वैसे ही जब बोध हुआ कि मन नीचे चला गया है, तो उसे पुन: उठाकर ऊपर लाना होगा। यही तो साधना है। किन्तु हमलोगों को हताश नहीं होना है। हमलोग जितना भी प्रयास क्यों न करें, वह कितना भी कम क्यों न हो, वह व्यर्थ नहीं जाता है। वह संचित रहता है। आदर्श की ओर, लक्ष्य की ओर यदि हमलोग एक कदम भी बढ़ाते हैं, तो उतनी दूरी तो कम हुई। उतना तो संचित हुआ। साधना करते-करते कभी-कभी ऐसा लगेगा कि सब कुछ नीरस है, अच्छा नहीं लग रहा है। साधन-भजन में थोड़ा-सा भी अग्रसर नहीं हो रहे हैं । शुष्क लगेगा, मानो सब कुछ शुष्क प्रतीत हो रहा है। ऐसा जब बोध होगा, तब समझना होगा, हम ठीक पथ पर अग्रसर हो रहे हैं। ये सब ठीक पथ के ही दिशा-निर्देश हैं। मन की ऐसी अवस्था नहीं आने तक क्या, हाय! हाय! करेंगे? क्या निराश होकर छोड़ देंगे? नहीं, अच्छा लगे या नहीं लगे, आगे बढ़ रहा हूँ, यह बोध हो या न हो, साधन-भजन नहीं छोड़ना होगा। धीरे-धीरे वह काल बीत जायेगा। साधना में मन लगने लगेगा।

वास्तव में क्या भगवान के अभाव में हमारे जीवन में असह्य विकलता का बोध हो रहा है? ठाकुर ने कहा है – जब भगवान के अभाव में यह जीवन असह्य बोध होगा, तभी अरुणोदय होगा। उसके बाद उनकी प्राप्ति में अब अधिक विलम्ब नहीं है। ऐसी मन की व्याकुलता नहीं होने तक हमलोग जो कुछ भी क्यों न करें, वह कुछ भी नहीं है। इसलिये प्रयास नहीं छोड़ना होगा। जब तक ऐसी व्याकुलता नहीं होती, तब तक प्रयास करते जाना होगा। हमारा थोड़ा-सा प्रयत्न भी व्यर्थ नहीं होता है, वह व्यर्थ नहीं होगा। वह नष्ट नहीं होगा, बल्कि संचित रहेगा। जब भविष्य में दुख-कष्ट आयेगा, तो यह सत्यप्रयास ही हमारी रक्षा करेगा। कितनी ही छोटी चेष्टा क्यों न हो, किसी सत्प्रयास को भूलना नहीं चाहिये। उसे स्मरण करने से भी उस समय शक्ति आती है। प्रारम्भिक नव वैराग्य, प्रयास इत्यादि भविष्य के जीवन में याद करने चाहिये। तब लगता है, अहा! कैसी मन की अवस्था थी! कितना आकर्षण था! कितना वैराग्य था!

हमलोगों ने एक साधु को देखा था। इनकी बात मैंने एक दिन और कही थी। वे जप-ध्यान, साधन-भजन करने में बहुत प्रसिद्ध थे। बाद में वे मठ छोड़कर गृहस्थ हो गये थे। उसके बाद जब वे मठ में आते थे, तब बहुत पश्चात्ताप करते थे। कहते थे, ''ठाकुर के शिष्यों ने इतनी कृपा की, किन्तु मैं उन लोगों की कृपा को ग्रहण करने का अधिकारी नहीं हूँ। उनलोगों की कृपा को धारण नहीं कर सका।'' यह बात कहते हुये उनकी आँखों से झर-झर आँसू बहने लगते थे। अहा! यह जो पश्चात्ताप है, इस पश्चात्ताप की अग्नि से मन की कलुषता, मन की ग्लानि दूर हो जाती है। कोई भी नहीं कह सकता है कि उसका पतन नहीं होगा। क्योंकि वह तो प्रकृति का कार्य है। पतन के ऊपर उठ गया है, ऐसा कोई दावा नहीं कर सकता। ठाकुर कहते थे – भगवान के लिये थोड़ा-सा भी अश्रु जिसने बहाया है, वह संचित है। वह नष्ट नहीं होता है। वह कभी-न-कभी प्रतिफलित होगा ही। **(क्रमश:)**

पृष्ठ ११९ का शेष भाग

अर्थ 'निकटवर्ती, लगा हुआ, पड़ोस का, सटा हुआ' है और शान्ति शब्द के अर्थ हैं – निराकरण, विश्राम, विराम, भूख की तृप्ति सौभाग्य-लक्ष्य की प्राप्ति, आदि। इस प्रकार, यहाँ 'त्यागात् शान्तिः अनन्तरम्' का उपयुक्त अर्थ बनता है - कर्मफल-त्याग के सन्निकट स्तरों पर, सोपानों पर बढ़ते जायें, तो लक्ष्य (अनन्य भक्ति) की प्राप्ति अवश्य हो जायेगी।

भक्ति के सोपानों के वर्णन के बाद अब आगे श्लोक १३ से १९ तक का जो वर्णन हुआ है, उसे कुछ व्याख्याकारों ने भक्ति की सफलता के लक्षण माने हैं, तो कुछ ने इन्हें आचरणीय गुण माना है। अर्थात् उनका विचार है कि इन गुणों को आचरण में लाने पर भक्ति की प्राप्ति होगी। हमारे विचार से यह आगामी वर्णन लक्षणों का ही वर्णन है, क्योंकि छठवें से बारहवें श्लोक तक जो कुछ गया है, वह भक्ति का चरणबद्ध क्रिया-पक्ष ही था। ○○○

आधुनिक मानव शान्ति की खोज में (१९)

स्वामी निखिलेश्वरानन्द

अध्यक्ष, रामकृष्ण आश्रम, राजकोट

ध्यान के सम्बन्ध में दूसरा प्रश्न उठता है कि ध्यान के लिए स्थान कैसा होना चाहिए ?

श्रीरामकृष्ण देव ईश्वरप्राप्ति के उपाय बताते हुए, 'श्रीरामकृष्ण वचनामृत' पुस्तक के प्रथम भाग में कहते हैं, 'ध्यान करो मन में, वन में और कोने में ।' वैसे तो ध्यान मन के द्वारा ही होता है, परन्तु श्रीरामकृष्ण देव प्रारम्भ में एकान्त में ध्यान करने को कहते हैं। वे उदाहरण देते हुए समझाते हैं कि एकान्त में जाकर ईश्वर का चिन्तन करना चाहिए। छोटे पौधे को घेरा डालकर न बचाएँ तो उसे गाय, बकरी खा जाती हैं। जब मन अपरिपक्व हो, तब एकान्त में जाकर ईश्वर-चिन्तन रूपी घेरे से चारों ओर संरक्षण देना चाहिए, नहीं तो सांसारिक कार्य और आसक्ति मन को ईश्वर के ध्यान में एकाग्र नहीं होने देते हैं।

बाह्य वातावरण का मन पर बहुत प्रभाव पड़ता है। नदी किनारे, गिरि की तलहटी में, गिरि-शिखर पर, गुफा में या अरण्य में जन-संकुल से दूर रहकर ईश्वर का ध्यान करने से ध्यान शीघ्र लगता है। संसार के कोलाहल से दूर पवित्र-शान्त-एकान्त वातावरण में मन शीघ्र शान्त और एकाग्र हो जाता है। इसीलिए स्वामी विवेकानन्द ने हिमालय में मायावती में अद्वैत आश्रम की स्थापना की।

यदि आज के युग में एकान्त में जाकर ध्यान करना सम्भव न हो, तो क्या करें? घर के एक कमरे में, कोने में बैठकर ध्यान कर सकते हैं। 'ध्यान और उसकी पद्धति' नामक पुस्तक में स्वामी विवेकानन्द बताते हैं कि "यदि सम्भव हो, तो केवल साधना के लिये एक अलग कमरा रखें, तो अधिक अच्छा है। इस कमरे में सोओ मत, उसे पवित्र रखो। जब तक स्नान करके शरीर-मन शुद्ध न हो, तब तक उस कमरे में मत जाओ। उस कमरे में हमेशा पुष्प रखो। योगी के लिये ऐसा वातावरण उत्तम है। मन में सात्त्विक भाव का उदय करनेवाले चित्रों को रखो। उसमें सबेरे-शाम धूप जलाओ। उस कमरे में लड़ाई-झगड़ा, क्रोध मत करो और अपवित्र विचार मत सोचो। जो लोग तुम्हारे जैसे समान विचार वाले हों, केवल उन्हें ही अन्दर आने दो। इस प्रकार धीरे-धीरे कमरे में पवित्र वातावरण बन जाएगा। इसलिये तुम जब भी शोकग्रस्त हो, दुखी हो, संशय में हो अथवा तुम्हारा मन व्यग्र हो, तब उस कमरे में प्रवेश करते ही तुम्हारा मन शान्त हो जाएगा।" ध्यान के लिये वातावरण व्यक्ति को स्वयं ही अपने घर में बनाना है। ऐसा पवित्र कक्ष ध्यान-मंदिर बन जाता है। उस कमरे में शान्ति और पवित्रता के उज्ज्वल प्रकाश की तरंगें ऐसी व्याप्त रहती हैं कि उसमें प्रवेश करते ही व्यक्ति को शान्ति की अनुभूति होने लगती है। परन्तु आज के युग में बहुत छोटे-छोटे घरों में अलग कमरा रखना सम्भव न हो, तो कमरे के एक कोने में अलग स्थान रख सकते हैं। यदि यह भी सम्भव नहीं हो, तो ब्रह्म मुहूर्त में उठकर प्रकृति के शान्त वातावरण का लाभ उठाकर हम ध्यान कर सकते हैं।

प्रारम्भ में ध्यान नहीं लगता है, क्योंकि मन का स्वभाव ही चंचल है। अर्जुन श्रीकृष्ण भगवान से कहते हैं कि यह मन अति चंचल है, इसे रोकना वायु को रोकने जैसा दुष्कर है। उसके उत्तर में भगवान कहते हैं, "अर्जुन तुम्हारी बात सच है, मन चंचल है, उसे वश में करना बहुत ही कठिन है, परन्तु अभ्यास और वैराग्य के द्वारा अवश्य वश में हो जाता है।" पातंजल योगसूत्र (१-१४) में भी कहा है – **स तु दीर्घकालनैरन्तर्य-सत्कारासेवितो दृढभूमिः** – अर्थात् लम्बे समय तक आदरपूर्वक निरन्तर बहुत अधिक अभ्यास करने से यह दृढ़ होता है। श्रीरामकृष्ण देव को भी एक भक्त ने ऐसा ही प्रश्न पूछा था, "संसार में रहकर ईश्वर का ध्यान करना बहुत कठिन क्यों लगता है?" उन्होंने कहा, "क्यों? अभ्यासयोग है न।" अभ्यासयोग से कठिन नहीं लगता है।

उसका उदाहरण देते हुए उन्होंने समझाया था कि गाँव में ग्रामीण महिलायें धान कूटते समय कितनी ओर ध्यान रखकर काम करती हैं? सुनो – ऊपर से मूसल एक निश्चित गति से गिरता रहता है, वह नीचे एक हाथ से धान समेटती रहती है। दूसरे हाथ में बच्चे को लेकर दूध पिलाती रहती है। उसी समय ग्राहक आ जाता है। एक ओर मूसल गिरता-उठता रहता है, साथ-साथ ग्राहक से बात भी करती है – 'तो फिर पिछले पैसे बाकी हैं, उसे चुका दो, फिर नया माल ले जाओ।'

देखो, बच्चे को दूध पिलाना, उठते-गिरते मूसल के नीचे से धान समेटना और कूटे हुए धान को निकालना, साथ

में ग्राहक के साथ बात करना, यह सब काम वह एक साथ कर रही है। इसका नाम है अभ्यासयोग। उसका पन्द्रह आना मन मूसल में होता है, कभी वह हाथ पर गिर गया तो ! बाकी एक आना मन से वह दूसरे सब काम करती है। इसी प्रकार संसार है, उसमें पन्द्रह आना मन भगवान को देना चाहिये। अन्यथा सर्वनाश। काल के पंजे में फँसना पड़ेगा।

अभ्यास के द्वारा मन को भगवान में इतना एकाग्र कर सकते हैं कि ध्यान सतत चलता रहेगा। जिसका मन ईश्वर में लगा हुआ है, उसे संसार की कोई परिस्थिति अशान्त नहीं कर सकती है। ईश्वर ने मनुष्य को सुख, शान्ति, आनन्द, प्रेम, बोल-चाल, व्यवहार से उत्तम प्रकार से जीवन जी सके, उसके लिये सरल साधन ध्यान-प्रार्थना-नाम-जप-भजन-कीर्तन आदि उपहार रूप में दिये हैं। इसमें से किसी एक साधन के द्वारा भी मनुष्य अपने जीवन में सच्चा सुख और शान्ति अवश्य प्राप्त कर सकता है।

ताल भंग न हो पाय

जीवन में जब कठिनाइयाँ आती हैं, तब मनुष्य सन्तुलन खो देता है, हड़बड़ाकर व्यग्र होकर भाग-दौड़ करने लगता है कि क्या करूँ, ऐसे करूँ कि वैसे करूँ, उसके पास जाऊँ, इससे मदद ले लूँ आदि। वह ऐसा सोचता हुआ आवेश में आकर बिना सोचे-समझे कदम उठाकर जीवन भर पश्चात्ताप करता है। जीवन में ऐसी विकट परिस्थिति में मनुष्य कुछ न करे, केवल धैर्यपूर्वक समय को बीत जाने दे, तो कठिनाइयाँ अपने आप चली जाएँगी। श्रीमाँ सारदा देवी ने कहा था, ''कोई भी संकट हमेशा नहीं बना रहता है। वह पुल के नीचे बहते पानी के समान तेजी से चला जाता है।'' इसलिये कठिन परिस्थितियों में मनुष्य को धैर्यपूर्वक रहना चाहिए। घने अन्धकार के बाद, सूर्योदय अवश्य होता है, दुख के बाद सुख आनेवाला ही है, यह मानकर दुख को सहन कर लेना चाहिए। जल्दीबाजी में कोई कदम नहीं उठाना चाहिए, नहीं तो जीवनभर पछताना पड़ता है और मन में फिर सतत चुभता रहता है कि 'काश, मैंने थोड़ा धैर्य रखा होता, तो सब ठीक हो गया होता।'

इस संदर्भ में एक सुन्दर कहानी है। राजदरबार में नृत्य चल रहा है। राजा, राजकुमार, राजकुमारी, नगर सेठ और सभी दरबारी नृत्य देख रहे थे। उसी समय एक संन्यासी वहाँ से जा रहे थे, वे भी खड़ा होकर नृत्य देखने लगे। नर्तकी नाचते-नाचते बहुत थक गई। रात समाप्त होनेवाली थी, पर अभी तक किसी ने पुरस्कार नहीं दिया था, इसलिये वह अपना नृत्य बन्द करने को सोचने लगी, उसने गीत गाते हुए अपना विचार नट को सुनाया –

रात तो अब बीत चली, थक गई पैंजनी मोरी।
नटी कहे सुनो वामदेव, इनाम मिला नहीं कोई।।

यह सुनकर नट घबराया। उसने सोचा कि यदि अभी यह नाचना बन्द कर देगी, तो सारी रात का परिश्रम व्यर्थ हो जायेगा। अत: उसने तुरन्त कहा –

बहुत गई थोड़ी रही, थोड़ी भी अब जाय।
नट कहे सुनो नटी, ताल भंग न हो पाय।।

तभी चमत्कार हो गया। संन्यासी ने अपना एकमात्र कम्बल इनाम के रूप में फेंक दिया। तभी नगर सेठ ने अपनी हीरे की अंगूठी फेंकी। राजकुमार ने अपनी कीमती चादर उस पर फेंकी और राजकुमारी ने अपने गले का कीमती हार पुरस्कार के रूप में दे दिया। राजा तो आश्चर्यचकित हो गया कि यह क्या हुआ? ये सभी नर्तकी पर इतने प्रसन्न क्यों हो गये? राजा ने सबसे इसका कारण पूछा। संन्यासी ने कहा, ''सब कुछ त्याग करके मैंने बहुत तपश्चर्या की, परन्तु आत्मज्ञान नहीं हुआ, इसलिये मैं संन्यास छोड़कर गृहस्थ होने की सोच रहा था। तभी इस गीत ने मुझे बचा लिया कि 'बहुत गई थोड़ी रही', तो फिर इस थोड़े के लिए मैं अपने संन्यासी जीवन को क्यों धूलधूसरित करूँ।''

नगर सेठ ने कहा, ''कई दिनों से मेरे बेटे की कोई सूचना नहीं मिल रही थी। मैंने निराश होकर मान लिया था कि माल से भरे जहाज के साथ वह समुद्र में डूब गया होगा। मेरा तो सर्वस्व लुट गया, यह सोचकर मैंने विष पीने का विचार किया था, परन्तु 'बहुत गई थोड़ी रही', इस गीत ने मेरी आँखें खोल दीं कि यह थोड़ी स्थिति भी अब बीत जाएगी। सम्भव है मेरा पुत्र जीवित हो और लौटकर आ जाये, तो मुझे अधीर क्यों होना चाहिए? इस तरह इस गीत ने मुझे जीवन दान दिया है।''

राजकुमारी ने कहा, ''पिताजी, आप अपने कंजूस स्वभाव के कारण मेरा विवाह नहीं कर रहे थे, इसलिए आज सबेरे मैंने भाग जाने की सोची थी। परन्तु गीत सुनकर मुझे लगा कि आप वृद्ध हो गये हैं, कितना और जीवित रहेंगे ! अब मैं थोड़े दिनों के लिए व्यर्थ कलंक क्यों लगाऊँ?''

राजकुमार ने कहा, ''पिताजी, बहुत दिनों से मैं सोच रहा था कि अब आप वृद्ध हो गये हैं और मुझे राजगद्दी

शेष भाग पृष्ठ १३६ पर

भक्त की नाव कभी डूब नहीं सकती

स्वामी सत्यरूपानन्द
सचिव, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर

हम सब श्रीठाकुर, श्रीमाँ और स्वामीजी के भक्त हैं। हमें ऐसा विश्वास रखना चाहिए कि हम संसार में कभी भी नहीं डूब सकते। अपना सब कुछ अपने इष्ट को अर्पण करके ऐसा विश्वास रखना चाहिए कि हम कभी भी भवसागर में डूब नहीं सकते। कुछ अनुचित होता है, तो मृत्यु का स्मरण रखें। जिसके सिर पर मृत्यु नाच रही हो, वह कुछ गलत नहीं कर सकता है। उसके पास जितना समय है, वह उसका सदुपयोग करने का प्रयास करेगा। यह मानना चाहिए कि यह सब ईश्वर की इच्छा से हुआ है, तो इससे आपको न सुख में अभिमान होगा, न दुख में दुख होगा। मन खराब होने पर ठाकुरजी के पास प्रार्थना करो, तो उससे तुम्हारा मन तुरन्त शान्त हो जायेगा। अपनी ओर सजग दृष्टि रखनी चाहिए। यह देखना चाहिए कि भगवान को पुकारने से मुझे आनन्द होता है क्या? यदि आनन्द नहीं मिल रहा है, तो यह देखें कि ऐसा क्यों हो रहा है? कहीं हमारा अहंकार तो प्रबल नहीं है। कहीं हमारा मन विषयों में लीन तो नहीं रहता है। संसार में अपने मन को जो चोट लगती है, उस आघात से बचने के लिये सत्संग, साधुसंग और नाम-जप करना चाहिए। इससे हमारा मन संतुलित होगा। मन को ठीक रखने के लिए भगवान से प्रार्थना करनी चाहिए। जीवन में कोई भी घटना हमें भगवान से विमुख न कर सके, इसका ध्यान रखना चाहिये। यह भगवान की योजना से हुआ है, यह समझना चाहिए। जो हमारे हाथ में नहीं है, वह हमारा प्रारब्ध है, उसे स्वीकार कर लेने से आधा दुख चला जायेगा।

हम ठाकुर के पास आये हैं, तो हमको बैर, द्वेष छोड़ना ही पड़ेगा। यदि ये सब नहीं छूटता है, तो उसके लिये ठाकुरजी के पास प्रार्थना करो। हमेशा 'मैं-मैं' करना ठीक नहीं है। हर जगह जीवन में भगवान को जोड़ना है। संसार का अधिक झंझट नहीं रखना है। अधिक झंझट में रहने पर मन चंचल होगा और मन चंचल होने से मन में अशान्ति होगी। इसलिये सत्संग करो। सत्संग करने से मन से बुराइयाँ निकल जाती हैं और मन में अच्छे विचार आते हैं। मनुष्य को पहले भला आदमी बनना चाहिए।

हम लोगों को समझ लेना चाहिये कि संसार में सब भगवान की ही माया है। इस माया को पहचानने के लिये भगवान ने सबसे अधिक शक्ति मनुष्य को ही दी है कि वह चाहे तो भगवान हो सकता है। हमारे सबके जीवन में रावण भी है और राम भी है। हमें सोचना चाहिए कि हमें रावण नहीं बनना है, राम ही बनना है। राम के जैसे बनने के लिये हमें भगवान की भक्ति करनी पड़ेगी, उनका नाम-जप करना पड़ेगा, उनसे प्रार्थना करनी पड़ेगी। सत्संग, सद्ग्रंथ-अध्ययन और सच्चर्चा करनी पड़ेगी, तब ये सद्वृत्तियाँ हममें आयेंगी। हमें कुसंग में नहीं पड़ना है, उससे बहुत दुख भुगतना पड़ता है। जगत को सुधारने के चक्कर में नहीं पड़कर पहले स्वयं ही सुधरना है। सत्संग नमक के समान है और संसार है शक्कर के समान। सत्संग में अधिक रुचि नहीं रहने के कारण वह हमें नमक के समान लगता है। संसार में अधिक रुचि रहती है, इसलिये वह शक्कर के समान लगता है, इसीलिए दुख भुगतना पड़ता है।

इसलिए हम साधना और भगवान के नाम-जप, आराधना के द्वारा मन को वश में रखने का प्रयास करें। भगवान कहते हैं, बुद्धिमान बनो, विवेकी बनो, इससे संसार में सुखी रहोगे। हमारा जीवन दूसरों के लिये भी उपयोगी हो, इसलिए हमारा व्यवहार अच्छा होना चाहिए। व्यवहारकुशल बनो। सज्जन बनो। सज्जनता साधक का प्रथम गुण है। मानव योनि में जन्म हुआ है, तो जीवन में मानवता के गुण सच्चाई, प्रेम, दया, परोपकार, सेवा आदि का विकास करो। भगवान ने कृपा कर मानव योनि में जन्म दिया है, तो उनकी प्राप्ति के लिये सच्चाई से प्रयास करो। क्योंकि जीवन में सच्ची सुख-शान्ति तो भगवान से ही मिल सकती है। सांसारिक सुख तो क्षणिक, अस्थायी और परवर्तीकाल में कई गुना दुखदायी हैं। अत: भगवान को पाने का प्रयास करो। ○○○

पृष्ठ ११६ का शेष भाग

बैठ गये । तत्काल जगदम्बा प्रकट हो गयीं और बोलीं, 'बेटा, वर माँगो ।' ब्राह्मण बोले, 'माँ, तुम तो बड़ी पक्षपाती हो ! जिस साधक ने इतना सारा आयोजन किया, उसे तो तुमने विभीषिका दिखाकर भगा दिया और मेरे इस आसन पर बैठते ही तुम प्रकट हो गयी ।' माँ बोली, 'बेटा, तुमने पिछले जन्मों में बहुत-कुछ किया है और उसने तो अभी आरम्भ मात्र किया है; उसे अभी बहुत-कुछ करना बाकी है ।' '' **(क्रमशः)**

श्रीमत्सुरेश्वराचार्यविरचिता

नैष्कर्म्यसिद्धिः

व्याख्याकार : स्वामी धीरेशानन्द, सम्पादन : स्वामी ब्रह्मेशानन्द

अतोऽशेषवेदान्तसारसंग्रह प्रकरणमिदमारभ्यते । तत्राऽभिलषितार्थप्रचयाय प्रकरणार्थसंसूत्रणाय चायमाद्यः श्लोकः।

– इसलिये वेदान्तसारसंग्रह का यह प्रकरण प्रारम्भ किया जाता है ।

व्याख्या – अतः क्योंकि ज्ञान मोक्षरूपी प्रयोजन बचा है । प्रकरण : यह प्रकरण ग्रन्थ है । प्रकरण ग्रन्थ क्या है?

शास्त्रैकदेशसम्बद्धं शास्त्रकार्यान्तरे स्थितम् ।
आहुः प्रकरणं नाम ग्रन्थभेदं विपश्चितः।।

– शास्त्र का वह अंश, जिसमें किसी एक विषय का प्रतिपादन हो ।

कार्यान्तर : विस्तारित, वर्णित परब्रह्म को संक्षेप में कहना।

अशेषवेदान्त : वेदान्त शास्त्र, सार : क्योंकि वेदान्त में कर्म, उपासना, सगुण, निर्गुण आदि की बातों से भिन्न केवल निर्गुण ब्रह्म प्रतिपादन मात्र वस्तु है । संग्रह : संक्षेप में, जिससे आसानी से मुमुक्षु समझ सके । प्रकरण ग्रन्थ का लक्षण शास्त्रैकदेशसंबद्ध : केवल एक देश – निर्गुण ब्रह्म, कार्यान्तर : जिसका विस्तार से प्रतिपादन शास्त्र में है, उसका संक्षेप प्रतिपादन ।

प्रथम श्लोक

खाऽनिलाऽग्न्यब्धरित्र्यन्तं स्रक्फणीवोद्गतं यतः।
ध्वान्तच्छिदे नमस्तस्मै हरये बुद्धिसाक्षिणे ।।१।।

आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी, इन पंच भौतिक स्वभाव वाला जो जगत है, वह जिससे फूल की माला में उत्पन्न सर्प की तरह उत्पन्न हुआ है, उसी अन्धकार को नाश करने वाली बुद्धि के साक्षी हरि-परमात्मा को नमस्कार करता हूँ ।

अब प्रत्येक श्लोक का सम्बन्ध बताने की इच्छा से प्रथम श्लोक का तात्पर्य कहते हैं ।

अभिलषित : वांछित, प्रचय : वृद्धि विस्तार, शिष्य-परम्परा तथा शिष्टाचार परिपालन के माध्यम से तथा शिष्ट परिग्रहण पंडितों द्वारा स्वीकार होने से ।

प्रथम श्लोक का प्रयोजन

१. अभिलषित अर्थ का प्रचय - अर्थात् शिष्य-परम्परा के माध्यम से प्रचार, विस्तार करने के लिये ।

२. ग्रन्थ की निर्विघ्न परिसमाप्ति के लिये

३. शिष्टाचार-परिपालन के लिए ।

४. इष्ट देवता के नमस्कार के लिए ।

५. प्रकरण के विषय तथा प्रयोजन की संक्षेप में सूचना देने के लिए ।

२ से ४ ये विद्या के अन्तरंग साधन कहे गये हैं ।

नमन : अभेद चिन्तनम् । शिवपंचाक्षरी में श्रीपद्मपादाचार्य कहते हैं – **'प्रणामो देहगेहादेरभिमाननाशम्'** – प्रणाम करने से देह-गेहादि के अभिमान का नाश होता है ।

प्रथम श्लोक का अन्वयार्थ –

खाऽनिलाऽग्न्यब्धरित्र्यन्तं - टीकाकार ने इसके ३ अर्थ किये हैं –

१. पंच भौतिक स्वरूप वाला जगत

२. अपंचीकृतमहाभूत जिसके लय स्थान हैं, वह जगत

३. अपंचीकृतमहाभूत, जिस पंचीकृतभूत-लक्षण वाले जगत का लय स्थान है, वह जगत

उद्गतं : कारण से कार्यजात

माला में सर्प की न्यायी – यह परिणाम तथा आरम्भवाद का निरास तथा विवर्तवाद का समर्थन करने के लिये कहा गया है । जिस प्रकार रज्जु में सर्प की मिथ्या प्रतीति होती है, उसी प्रकार जगत की ब्रह्म में मिथ्या प्रतीति होती है ।

ध्वान्तच्छिदे : अज्ञान रूप अन्धकार का नाश करने वाला है । इससे अज्ञाननिवृत्ति लक्षण ग्रन्थ का प्रयोजन कहा गया है ।

हरये : अर्थात् हरि के प्रति

बुद्धिसाक्षिणे – आत्मा के प्रति । दोनों को एक ही विभिक्ति में कहा गया है । इस मुख्य सामानाधिकरण्य से परमात्मा और आत्मा का एकत्व रूप विषय ज्ञान प्रदर्शित हुआ है । **(क्रमशः)**

रामकृष्ण संघ के संन्यासियों का दिव्य जीवन (२७)

स्वामी भास्करानन्द

(रामकृष्ण संघ के महान संन्यासियों के जीवन के प्रेरणाप्रद प्रसंगों की सरल, सरस और सारगर्भित प्रस्तुति स्वामी भास्करानन्द जी महाराज, मिनिस्टर-इन-चार्ज, वेदान्त सोसायटी, वाशिंग्टन ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'Life in Indian Monasteries' में की है। 'विवेक ज्योति' के पाठकों हेतु इसका हिन्दी अनुवाद रामकृष्ण मिशन आश्रम, भोपाल के ब्रह्मचारी चिदात्मचैतन्य ने किया है। – सं.)

मेरी स्मृति में नरेन महाराज

बेलूड़ मठ में एक नरेन महाराज थे। वे 'तोतला नरेन महाराज' के नाम से जाने जाते थे। एक बार वे एक संन्यासी से वार्तालाप करने में मग्न थे। तब उन दोनों की आयु सत्तर वर्ष की थी। वार्तालाप के दौरान उन संन्यासी ने नरेन महाराज को चिढ़ाने के लिए कहा, "You're a fool! (तुम मूर्ख हो) !"

नरेन महाराज ने मुस्कुराकर अविलम्ब प्रत्युत्तर दिया, "क्या ! तुम कह रहे हो – "I'm beautitful" (मैं सुन्दर हूँ?) क्या तुम्हारी आँखें नहीं हैं? मेरी ओर देखो ! मेरे सारे दाँत गिर गए हैं। मेरी त्वचा मुरझा गयी हैं। मैं अब बन्दर जैसा दिखाई देता हूँ ! कैसे मैं beautitful (सुन्दर) हो सकता हूँ?" उनकी इन बातों से दोनों बहुत जोर-जोर से हँसने लगे।

स्वयं को उपहास का पात्र बनाकर विनोद करने की नरेन महाराज की अद्भुत क्षमता थी। उनका स्वभाव बहुत अच्छा था। बेलूड़ मठ में अनेक वर्ष मैं संन्यासी के रूप में सेवारत था। उसमें से कुछ दिन मैं अवकाशप्राप्त वृद्ध संन्यासियों के भवन में भी रहा था। उनमें एक नरेन महाराज नामक वृद्ध संन्यासी थे। उस भवन में रहने वालों में मैं सबसे छोटा था। इसलिए वृद्ध संन्यासियों का स्वभावत: मुझ पर अधिक स्नेह था।

उन लोगों की जीवनचर्या बहुत नियमित थी। वे भोर में ही जग जाते, स्नान करते और नाश्ता के समय तक ध्यान करते रहते थे। नाश्ता के बाद वे लोग बेलूड़ मठ के चारों मन्दिरों में जाकर प्रणाम करने के बाद मठ के विस्तृत परिसर में एकान्त स्थान में भ्रमण करते थे। इसी से उनलोगों का सुबह का व्यायाम हो जाता था।

मैं नाश्ता के बाद प्रधान कार्यालय में जाकर अन्य संन्यासियों के साथ कार्य करता था। स्वामी स्वानन्द वहाँ पत्राचार विभाग में कार्य करते थे। वे संघ के महासचिव और अन्य दो सह-महासचिवों के निजी सचिव के समान कार्य करते थे। उस पद पर उनकी नियुक्ति औपचारिक नहीं थी, लेकिन हमलोग विनोद में उन्हें कार्यालय प्रभारी कहा करते थे।

अपने सुबह भ्रमण के बाद वापस जाते समय, नरेन महाराज और अन्य वरिष्ठ संन्यासीगण कार्यालय के सामने केवल मुझे 'हैलो' कहने के लिए नियमित रूप से रुकते थे। स्वामी स्वानन्द विनोद में उनलोगों को मेरे 'देवदूत अभिभावक' (guardian angels) जैसे कहते।

मैं अपने देवदूतों का सम्मान करता था, लेकिन इसके साथ ही उन लोगों से विनम्रतापूर्वक विनोद भी करता था, जो उन्हें अच्छा लगता था। जैसे, एक दिन मैंने नरेन महाराज से कहा, "श्रीरामकृष्ण देव कहते थे, यदि कोई बारह वर्षों तक सत्य का पालन करता है, तो वह जो कुछ भी कहता है, वह सत्य हो जाता है। आप पचास वर्षों से भी अधिक संघ में जीवन व्यतीत कर रहे हैं। संन्यासी के रूप में आप इतने दिनों से सत्य का पालन करते आ रहे हैं, आप जो कुछ भी कहेंगे, वह सत्य ही होगा, तो आप मुझे आशीर्वाद दीजिए, "तुमको इसी क्षण निर्विकल्प समाधि की प्राप्ति हो।" तब तत्क्षण मेरी सभी आध्यात्मिक समस्याओं का समाधान हो जायेगा।"

लेकिन, नरेन महाराज ने कहा, "ठाकुर (श्रीरामकृष्ण) तुमको आशीर्वाद देगें। आशीर्वाद देने वाला मैं कौन हूँ?" वे मेरे विनोद को समझ गये। उनकी मुस्कुराहट से यह स्पष्ट प्रतीत हो रहा था कि उन्होंने इसे पसन्द किया।

यद्यपि नरेन महाराज की उम्र अधिक हो चुकी थी, फिर भी उनका स्वास्थ्य बहुत अच्छा था। बहुत वर्षों तक उनको कोई रोग नहीं था। लेकिन अन्त में उनके गले का दर्द निरन्तर बढ़ने लगा, जिसे चिकित्सक से जाँच करवाना आवश्यक हो गया। वे हमारे कोलकाता के अस्पताल में जाँच करवाने के लिए गये, जहाँ गले में कैन्सर की जानकारी हुई। इस सूचना से वे चिन्तित न हो जायें, इसलिए चिकित्सकों ने रोग-निदान के बारे में उन्हें कुछ भी नहीं बताया, यद्यपि बेलूड़ मठ कार्यालय में हम लोगों को यह सूचना मिल गयी थी। जाँच के कुछ दिनों के बाद नरेन महाराज हमारे

कार्यालय में मुझसे मिलने के लिये आये और मुझसे पूछा, "जाँच में क्या है? चिकित्सकों ने मुझसे कुछ भी नहीं कहा। क्या इसमें कुछ समस्या है?"

मैंने कहा, "आप चिन्तित हो जायेंगे, इसलिये चिकित्सक जाँच के बारे में आपको कुछ बताने में संकोच कर रहे थे। लेकिन आप संन्यासी हैं, उन्हें आपसे यह बात बताने में कोई संकोच नहीं होना चाहिए था। हम लोगों ने अस्पताल से जो कुछ सुना, उसे मैं आपको बता सकता हूँ। उन्होंने हमें बताया कि आपको कैन्सर है।"

नरेन महाराज इस सूचना से तनिक भी प्रभावित नहीं हुये। उन्होंने हँसते हुए कहा, "अच्छा है ! ठाकुर भी इसी रोग से पीड़ित थे। शरीर को तो एक-न-एक दिन जाना ही है, ठीक है न?" उसके बाद उन्होंने पूछा, "मैं और कितने दिनों तक जीवित रहूँगा? इसके बारे में क्या चिकित्सकों ने कोई समय-सीमा बताई है?"

मैंने उनसे कहा, "मुझे ठीक याद नहीं है कि चिकित्सकों ने क्या कहा था, लेकिन निश्चित ही एक वर्ष से कम का समय उन्होंने कहा था।" नरेन महाराज ने मुझे धन्यवाद दिया और प्रसन्नचित्त से कार्यालय से चले गये।

इस घटना के कुछ दिनों बाद ही बेलूड़ मठ ने मुझे अमेरिका में सेवाकार्य के लिए भेज दिया। वहाँ जाने के पहले कार्यालय के संन्यासियों ने मुझे अनौपचारिक विदाई दी। तभी नरेन महाराज अचानक कहीं से कार्यालय में आ गये। उन्हें इस कार्यक्रम का प्रमुख अतिथि बनाया गया। उन्होंने बहुत विनोद किया और मेरी भावी सफलता के लिये प्रार्थना की।

जब मैं दो वर्षों बाद बेलूड़ मठ आया, तो नरेन महाराज की विलक्षण मृत्यु के बारे में सुना। मेरे भारत से जाने के बाद उन्हें हमारे कोलकाता के अस्पताल में भर्त्ती किया गया। वे कुछ और अधिक महीने जीवित रहें, इसलिए उनके कैन्सर की चिकित्सा की गई। वे अस्पताल में संन्यासियों के लिए आरक्षित कक्ष में रखे गये। वे सदा प्रसन्न रहते थे और अन्य संन्यासियों को प्रतिदिन 'Good morning' (सुप्रभात) कहकर अभिवादन करते थे। (यद्यपि उनकी मातृभाषा बँगला थी और वे जिन संन्यासियों को अभिवादन करते थे, वे सभी अंग्रेजी-भाषी नहीं थे, लेकिन विनोद करने के लिये वे उन्हें अंग्रेजी में अभिवादन कर आनन्दित होते थे।)

नरेन महाराज अंग्रेजी अच्छी जानते थे। उन्होंने विश्वविद्यालय में स्नातकोत्तर में अंग्रेजी साहित्य का अध्ययन किया था, लेकिन उन्होंने पाठ्यक्रम पूर्ण किया या नहीं, यह मैं नहीं जानता। संन्यासियों को दोपहर में या सन्ध्या के समय गुड मार्निंग कहना अधिक विनोदपूर्ण लगता था। यहाँ तक कि अपने जीवन के अन्तिम दिन तक उन्होंने अपने आसपास के रोगियों को इसी प्रकार अभिवादन किया और उसके बाद शय्या पर सो गये तथा वहीं अन्तिम साँस ली ।

द्वारका महाराज और उनकी शबरी की कहानी

स्वामी शिवेशानन्द (१८९४-१९७५) जो द्वारका महाराज के नाम से भी जाने जाते थे, ने अपने संन्यास जीवन का अधिकांश समय बेलूड़ मठ में व्यतीत किया था। लगभग चालीस वर्ष पूर्व जब मैंने उनको देखा था, तब उनकी आयु साठ वर्ष से अधिक होगी। वे बहुत स्वस्थ और हृष्ट-पुष्ट थे। उनके प्रेमिक स्वभाव के कारण संन्यासी तथा भक्त उनको बहुत पसन्द करते थे। बहुत से नवयुवक, विशेष रूप से बेलूड़ मठ के निकट हमारे आवासीय डिग्री कॉलेज के विद्यार्थियों ने उन्हें 'गल्प महाराज' उपनाम दिया था। बँगला में गल्प माने कहानी, अर्थात् 'कहानी कहने वाले महाराज'। वे वास्तव में एक उत्तम कहानीकार थे। वे साधारणत: हिन्दू पौराणिक साहित्यों से कहानी सुनाते थे। शबरी की कहानी उन्हें बहुत प्रिय थी।

महाकाव्य रामायण में शबरी की कहानी आती है। वह वन में रहती थीं और बहुत भक्तिमती थी। युवावस्था में उसने वनवासी ऋषियों की बहुत भक्तिभाव से सेवा की थी। उसकी सेवा से सन्तुष्ट होकर एक ऋषिप्रवर ने उसे यह आशीर्वाद दिया था, "भगवान् राम अपने भाई लक्ष्मण के साथ एक दिन तुम्हारे आश्रम को धन्य करने आएँगे। जब वे आएँ, तो परम अतिथि के रूप में उनकी सेवा-अभ्यर्थना करना। भगवान राम की कृपा से तुम्हें सर्वोच्च अभीष्ट की प्राप्ति होगी।"

तब से शबरी अपने सम्पूर्ण मन-प्राण से भगवान राम के आने की प्रतीक्षा करती रहती थी। वह प्रतिदिन सुबह बहुत आशा से राम के लिए वन से स्वादिष्ट फल और बेर चुन कर रखती थी, क्योंकि उसे यह नहीं कहा गया था कि राम कब आयेंगे। हर बार जब वन के वृक्षों से सूखी पत्तियों के गिरने की आवाज आती, तो वह सोचती कि यह राम की पदध्वनि है। वह दौड़कर आश्रम से बाहर आती, किन्तु राम को न देखकर दुखित हो जाती।

इस प्रकार धीरे-धीरे दिन, महीने और वर्ष व्यतीत होते गये, किन्तु शबरी तब भी राम की पदध्वनि सुनने के लिए बहुत धैर्य के साथ प्रतीक्षा करती रही। अन्तत: बहुत वर्षों

बाद जब शबरी बहुत वृद्ध हो गयी, तब भगवान राम उसके आश्रम में आये। श्रीराम शबरी की एकान्तिक भक्ति से बहुत प्रसन्न हुए। श्रीराम के आशीर्वाद और अनुमति से शबरी ने पवित्र अग्नि जलाकर उसमें अपने वृद्ध एवं जीर्ण शरीर को त्याग दिया। श्रीराम की कृपा से वह उनके श्रीचरणों में लीन हो गई और उसे परमधाम की प्राप्ति हुई। इस प्रकार रामायण में शबरी की कहानी समाप्त होती है।

शबरी की कहानी वे बार-बार सुन्दर ढंग से बताते और कभी थकते नहीं थे। वे कहा करते थे, "अब मैं तुमलोंगो को शबरी की कहानी सुनाऊँगा। लेकिन क्या तुम जानते हो कि शबरी कौन थी? वह मैं था ! हाँ, वास्तव में ऐसा ही था, जब मैंने बेलूड़ मठ में ब्रह्मचारी के रूप में प्रवेश लिया, तो मैं शबरी के जैसा ही था ! महापुरुष महाराज (स्वामी शिवानन्दजी महाराज, तत्कालीन संघाध्यक्ष) से मेरी दीक्षा हुई। वे मठ भवन के ऊपरी मंजिल में रहते थे।

"मठ के मैनेजर महाराज ने मुझसे कहा, "मठ-प्रांगण में आम और कटहल के वृक्षों को देखो। उन वृक्षों से सूखे पत्ते गिरने से परिसर हमेशा गन्दा रहता है। आँगन को स्वच्छ रखना तुम्हारा कार्य है। जब महापुरुष महाराज मठ-भवन से बाहर आयें, तो उनको आँगन में सूखी पत्तियाँ नहीं दिखनी चाहिए।"

"मैं इस कार्य को पाकर खुश था और परिसर को बहुत सावधानी से स्वच्छ करने का प्रयास करता था। जैसे ही मैं जमीन पर एक भी पत्ता गिरने की आवाज सुनता, वैसे ही अविलम्ब दौड़कर जाता और उसे उठा लेता। मेरा सम्पूर्ण दिन पत्ते चुनने में बीत जाता, क्योंकि मुझे यह पता नहीं था कि मेरे गुरुदेव प्रांगण में कब आ जायेंगे। अत: मैं शबरी जैसा हो गया। मैं पूर्ण व्याकुलता से अपने गुरुदेव के लिए सावधानीपूर्वक प्रांगण को स्वच्छ रखने का प्रयास करता था और उनकी पदध्वनि सुनने की प्रतीक्षा में रहता था।"

इतना कहकर द्वारका महाराज सुननेवालों की ओर देखते, कुछ देर रुकते और उसके बाद कहते, "क्या तुम एक बात जानते हो? जब मैं आँगन को स्वच्छ रखने में व्यस्त रहता, तब मैं यह नहीं जानता था कि मैं अनजाने में ही इसके साथ किसी अन्य वस्तु को भी स्वच्छ कर रहा हूँ। वह था मेरा मन। हमारे शास्त्र कहते हैं, सम्पूर्ण मन से ईश्वर की सेवा करने से व्यक्ति का मन शुद्ध होता है। यह शुद्ध मन ही भक्त को अन्तत: ईश्वर की प्राप्ति के लिए योग्य बनाता है। हमारे शास्त्र यह भी कहते हैं कि गुरु और ईश्वर दोनों एक एवं अभिन्न हैं। इसलिये तुम देखो, प्रांगण से पत्तियों को साफ करना मेरी साधना हो गयी।"

इस प्रकार द्वारका महाराज अपनी अद्भुत शबरी की कहानी को समाप्त करते थे। **(क्रमशः)**

पृष्ठ १३१ का शेष भाग

दे देंगे, किन्तु मेरा धैर्य समाप्त हो गया था, इसलिए मैं सोच रहा था कि आज आपको मार डालूँगा। लेकिन इस गीत ने मुझे पितृहत्या के पाप से बचा लिया। मुझे लगा कि आप वृद्ध हो गये हैं, कितने दिन जीएँगे ! इतने दिन प्रतीक्षा की है, तो कुछ दिन और सही। व्यर्थ पितृहत्या का पाप क्यों बटोरूँ?

यह सुनकर राजा ने भी नट और नटी को विशेष पुरस्कार देकर प्रसन्न कर दिया। बाद में राजकुमार को राजगद्दी पर बैठाया और राजकुमारी का विवाह कर दिया। इस प्रकार केवल एक गीत ने कितने लोगों के जीवन बचा लिये।

जीवन में जब कठिन समय गुजर रहा हो, धैर्य समाप्त हो रहा हो, परिस्थिति असह्य बन रही हो, तब मनुष्य जल्दबाजी में अकरणीय कर्म कर देता है। ऐसे समय में ये शब्द याद रखने चाहिए, 'बहुत गई थोड़ी रही, थोड़ी भी अब जाय।' फिर जीवन में कभी तालभंग नहीं होगा, कभी पश्चात्ताप की बारी नहीं आएगी। **(क्रमशः)**

लघु-वाक्यवृत्ति

श्रीशंकराचार्य

(अनुवाद : स्वामी विदेहात्मानन्द)

जागर-स्वप्नयोरेव बोधाभास-विडम्बना ।
सुप्तौ तु तल्लये शुद्धबोधो[१] जाड्यं प्रकाशयेत् ।।४।।

अन्वयार्थ – जागर-स्वप्नयोः जाग्रत तथा स्वप्न की अवस्थाएँ **एव** ही **बोधाभास-विडम्बना** प्रतिबिम्बित चैतन्य अर्थात् जीवात्मा के विभिन्न सम्बन्धों तथा क्रियाओं की (आधारभूमि है), **तु** जबकि **सुप्तौ** गहरी निद्रा के समय **तत् लये** उनका (प्रतिबिम्बित चैतन्य के साथ बुद्धि का पूर्वोक्त कारण उपाधि में) लय हो जाने पर **शुद्धबोधः** शुद्ध चैतन्य **जाड्यं** अज्ञान को **प्रकाशयेत्** आलोकित कर देता है।

भावार्थ – जाग्रत तथा स्वप्न की अवस्थाएँ ही प्रतिबिम्बित चैतन्य अर्थात् जीवात्मा के विभिन्न सम्बन्धों तथा क्रियाओं की (आधारभूमि है), जबकि गहरी निद्रा के समय उनका (प्रतिबिम्बित चैतन्य के साथ बुद्धि का पूर्वोक्त कारण उपाधि में) लय हो जाने पर, शुद्ध चैतन्य अज्ञान को आलोकित कर देता है।

– टीका –

किञ्च जाग्रत्स्वप्नावस्थयोः बोधाभास-विडम्बना, चिदा-भास-व्यवहारः। सुषुप्तौ तु चिदाभासलयात् शुद्ध-बोधः कूटस्थः जाड्यम् अज्ञानं प्रकाशयेत्, सुषुप्ति-समये सर्वलये अपि, कूटस्थ-चैतन्यं निर्विकारतया तिष्ठति इत्यर्थः, 'न हि द्रष्टुर्दृष्टेर्विपरिलोपो विद्यतेऽविनाशित्वात्' इति श्रुतेः। सुप्तोत्थितस्य सुखाज्ञानयोः अनुभूयमानयोः परामर्श-दर्शनात् च ।।

– भावार्थ –

और भी – जाग्रत तथा स्वप्न अवस्थाओं में जीवात्मा का जो कर्म-वैचित्र्य हुआ करता है, वह प्रतिबिम्बित चैतन्य की क्रिया है। परन्तु सुषुप्ति के समय प्रतिबिम्बित चैतन्य का लय हो जाने से कूटस्थ शुद्ध चैतन्य – जाड्य अर्थात् अज्ञान को प्रकाशित करता है। सुषुप्ति काल में सब कुछ लय हो जाने पर भी, निर्विकार कूटस्थ चैतन्य विराज करता है। श्रुति कहती है – 'द्रष्टा के अविनाशी होने के कारण उसकी दृष्टि का विनाश नहीं होता'।[२] और यह भी देखने में आता है कि सुषुप्ति से उठा हुआ व्यक्ति सुख तथा अज्ञान की अनुभूति अर्थात् समस्त जागतिक पदार्थों के विषय में अज्ञान प्रकट करता है।।४।।

जागरेऽपि धियस्तूष्णीं-भावः शुद्धेन भास्यते ।
धी-व्यापाराश्च चिद्भास्याश्चिदाभासेन संयुताः ।।५।।

अन्वयार्थ – जागरे जाग्रत अवस्था में **अपि** भी, **धियः** बुद्धि की **तूष्णींभावः** शान्त (अविकृत) अवस्था, **शुद्धेन** शुद्ध चैतन्य के द्वारा **भास्यते** प्रतिभात होती है। **च** और (उस) **चिद्-भास्याः** शुद्ध चैतन्य द्वारा प्रकाशित हुए **धी-व्यापाराः** बुद्धि के कार्य भी **चिदाभासेन** शुद्ध चैतन्य के प्रतिबिम्बित प्रकाश (अर्थात् जीवात्मा) के साथ **संयुताः** युक्त होकर (स्थित रहते हैं।)

भावार्थ – जाग्रत अवस्था में भी बुद्धि की शान्त (अविकृत) अवस्था शुद्ध चैतन्य के द्वारा प्रतिभात होती है और (उसी प्रकार) बुद्धि के कार्य भी शुद्ध चैतन्य के प्रतिबिम्बित प्रकाश (अर्थात् जीवात्मा) के साथ युक्त होकर (स्थित रहते हैं।)

– टीका –

सम्प्रति हस्त-प्राप्यमिव कूटस्थ-चैतन्यं जाग्रति दर्शयति – जागरे इति। जाग्रदवस्थायाम् अपि बुद्धेः तूष्णींभावः शुद्धेन अविकारि-चैतन्येन कूटस्थेन भास्यते, वृत्ति-रहितम् अन्तःकरणं शुद्ध-चैतन्येन अनुभूयते इत्यर्थः। सवृत्तिकान्तःकरणस्य चैतन्य-द्वयावभास्यत्वम् आह – धी-व्यापाराः इति।। चिद्भास्याः निर्विकार-चैतन्य-भास्याः धी-व्यापाराः बुद्धि-वृत्तयः चिदाभासेन संयुताः धीस्थ-जीवेन सहिता भास्यन्ते, सवृत्तिकम् अन्तःकरणं निर्विकार-सविकार-चैतन्याभ्याम् भास्यते, निर्वृत्तिकम् अन्तःकरणं तु केवलेन निर्विकार-चैतन्येन एकेन एव भास्यते इत्यर्थः ।।

– भावार्थ –

अब 'जागरे' आदि वाक्य के द्वारा ऐसा दिखा रहे हैं मानो कूटस्थ चैतन्य हाथ में आ गया हो। जाग्रत अवस्था में भी बुद्धि की शान्त अवस्था – शुद्ध, कूटस्थ, निर्विकार चैतन्य द्वारा प्रकाशित होती है, अर्थात् वृत्तिरहित अन्तःकरण शुद्ध चैतन्य द्वारा अनुभूत होता है। (परन्तु) वृत्तियुक्त अन्तःकरण – शुद्ध तथा प्रतिबिम्बित – दोनों के द्वारा अवभासित होता है, यही बताने के लिये 'धी-व्यापार-सकल' आदि कहते हैं। बुद्धिवृत्ति के समस्त कार्य प्रतिबिम्बित चैतन्य के साथ युक्त होकर बुद्धि में स्थित जीव के साथ प्रकाशित होते हैं; अर्थात् वृत्तियुक्त अन्तःकरण – निर्विकार तथा सविकार – दोनों चैतन्यों द्वारा प्रकाशित होता है, परन्तु वृत्तिहीन अन्तःकरण – केवल निर्विकार चैतन्य द्वारा ही प्रकाशित होता है।।५।।

---

१. बोधः शुद्धो इति वा पाठः
१०. बृहदारण्यक उप. ४/३/२३

हमारी विज्ञानसम्मत यज्ञमयी संस्कृति

डॉ. श्रीलाल

सम्पादक, 'गीता स्वाध्याय'

भारतीय मनीषा ने 'यज्ञ' शब्द का व्यापक अर्थ किया है। वैसे यज्ञ का शाब्दिक अर्थ पूजा होता है। पूजा का शाब्दिक अर्थ है – पत्र-पुष्प-गन्धादि के द्वारा ईश्वर या विशिष्ट देवता का ध्यान-स्मरण करना, अर्चना करना। मनु महाराज ने नित्य करने वाले पाँच महायज्ञ बताये हैं, इनको समझने से यज्ञ शब्द की व्यापकता तथा उपयोगिता आत्मसात् हो जाती है –

ऋषियज्ञं देवयज्ञं भूतयज्ञञ्च सर्वदा।
नृयज्ञं पितृयज्ञञ्च यथाशक्ति न हापयेत्।।मनु.४/२१।।
अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम्।
होमो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम्।।मनु.३/७०

अर्थात् ऋषियज्ञ (ब्रह्मयज्ञ), देवयज्ञ (होमात्मक यज्ञ), भूतयज्ञ, नृयज्ञ (अतिथि यज्ञ) और पितृयज्ञ इन पाँचो यज्ञों को यथाशक्ति करते ही रहना चाहिए। विद्या – पढ़ना-पढ़ाना, ध्यान, जप ये ब्रह्मयज्ञ में आते हैं। माता-पिता, सास-ससुर आदि की सेवा पितृयज्ञ है। अग्निहोत्र देवयज्ञ है। गाय, कुत्ता, चींटी आदि को भोजन देना, वृक्षों को जल देना भूतयज्ञ है तथा आगन्तुक अतिथि (चाहे वह कोई भी हो) की सेवा करना नृयज्ञ है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि यज्ञ शब्द परिवार, समाज पर्यावरण सभी के पालनार्थ त्याग करने के विशाल अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। गीता में भगवान श्रीकृष्ण 'यज्ञ' शब्द के विभिन्न अर्थ अध्याय ३ तथा ४ में विस्तार से समझाते हैं। श्रीकृष्ण के अनुसार मुख्यत: निष्काम भाव से कर्तव्य करना यज्ञ है। अत: वे गीता में यज्ञ को कर्म-बन्धन से मुक्त होने का उपाय कहते हैं –

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः।
तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसङ्गः समाचर।।३/९।।

हे अर्जुन ! सभी कर्म यज्ञ के निमित्त (निष्काम कर्तव्य) ही करो, इसके अतिरिक्त कर्म बन्धनकारी हैं, इसलिये तुम अनासक्त भाव से, किन्तु पूर्ण मनोयोग से यज्ञकर्म करते रहो।

अब हम यहाँ कुछ पर्यावरणशोधक तथा पोषक होमात्मक यज्ञ के विषय में विशेष चर्चा करते हैं। यह यज्ञ पंचमहाभूतों – पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि तथा आकाश को तेजस्वी बनाये रखता है, इन्हें प्रदूषण मुक्त रखता है।

वायु प्रदूषण का निवारण – वायुमण्डल में व्याप्त कार्बन मोनो-ऑक्साइड, कार्बन डाइ-ऑक्साइड एवं नाइट्रोजन ऑक्साइड इत्यादि प्रदूषकों को यज्ञ के द्वारा नियन्त्रित किया जाता है। ऑक्सीजन के परिमाण में वृद्धि होती है। पर्यावरण में उपस्थित धन-विद्युतीय आवेश बढ़कर उसे प्रदूषित करता रहता है। यज्ञ में पदार्थों की उपचयन क्रिया के द्वारा वायुमण्डल में ऋण-विद्युतीय आवेश (इलेक्ट्रान) उत्पन्न होते हैं, जो धन-आवेश के हानिकारक प्रभाव को नष्ट कर देते हैं तथा बादलों के साथ संयुक्त होने पर ये इलेक्ट्रॉन उसके विषांश को समाप्त कर देते हैं। वर्षा के रूप में भूमि पर गिरता हुआ, वह जल बिल्कुल शुद्ध एवं स्वास्थ्यप्रद होता है। यज्ञ के द्वारा परिशोधित जल एवं वायु मनुष्यों के अतिरिक्त वृक्षों-लताओं इत्यादि के लिए भी वृद्धिकारक और कीटाणुरोधक हो जाते हैं, जिससे हरीतिमा का संवर्द्धन भी होता है।

ध्वनि के वाहक आकाश तत्त्व का शुद्धिकरण – अमेरिका के वैज्ञानिक डॉ. हार्वड स्टिर्गुल ने अपने परीक्षण में पाया कि गायत्री मन्त्र के सस्वर उच्चारण से एक सेकेण्ड में १,१०,००० तरंगें उत्पन्न होती हैं, जो दुर्भावनाओं को बहुत सीमा तक शान्त कर देती हैं। हमारे तत्त्वदर्शी ऋषियों ने आविष्कार किया कि किस-किस शब्द का, क्रम से, किस भावना और किस स्थिति में, कैसा उच्चारण किया जाये, तो उसकी प्रतिक्रिया व्यक्ति एवं समष्टि पर कल्याणकारी होगी। इसी वैज्ञानिक उपलब्धि पर यज्ञ में मन्त्रोच्चारण का प्रावधान हुआ। ध्वनिशक्ति वेद मन्त्रों में अपरिमित ऊर्जा पैदा करती है। ध्वनि के इस प्रभाव को अब विज्ञान भी समझने लगा है।

विचारों को ईश्वरोन्मुख बनाने, कषाय-कल्मषों का परिशोधन कर पात्रता विकसित करने तथा अनन्त के प्रति तादात्म्य भाव विकसित करने के रूप में यज्ञ परम सहायक हैं। यज्ञीय भाव से किये गये कर्म दिव्य कर्म बन जाते हैं। जिस तरह अग्नि यज्ञ-कुण्ड में प्रज्वलित होती है, वैसे ही ज्ञानाग्नि अन्त:करण में, तापाग्नि इन्द्रियों में तथा कर्माग्नि देह में प्रज्वलित रहनी चाहिए। यही यज्ञ का आध्यात्मिक रूप है। हर श्वास में सम्पादित दिव्य कर्म ही यज्ञ है। यज्ञ में समाहित विचार एवं प्रेरणाएँ आस्था परिशोधन एवं आदर्श

की प्रतिष्ठापना का एक सशक्त माध्यम हैं।

सर्वकल्याणकारक यज्ञ – उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि पर्यावरण चाहे भौतिक हो, सामाजिक हो, सांस्कृतिक हो या आध्यात्मिक, यज्ञ हर प्रकार के पर्यावरण को शुद्ध व चैतन्य बनाने में सक्षम है। इसीलिए सभी प्रकार की उन्नति को सामने रख कर भारतीय मनीषियों ने प्राणिमात्र को सुख प्रदान करने के लिए यज्ञ को जीवन-पद्धति का अभिन्न अंग बनाया, जिससे मानव ही नहीं, अपितु पशु-पक्षी चल-अचल, थलचर, नभचर, वृक्ष और सम्पूर्ण पर्यावरण सुरक्षित रहे तथा सबको विकसित होने का पूर्ण अवसर मिले।

यज्ञ से सृष्टि का निर्माण

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक्।।गीता३.१०

कल्प के आदि में परमेश्वर ने यज्ञ के द्वारा प्रजा की सृष्टि कर सबको आज्ञा दी कि तुम लोग इसी यज्ञ प्रक्रिया को निरन्तर रखते हुए वृद्धि करो, यह यज्ञ तुम्हें मनोवांछित (कल्याणकारी) फल प्रदान करेगा।

यज्ञ से देवपूजन

देवान्भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ।।गीता ३.११

इस यज्ञ के द्वारा देवताओं (पृथ्वी, जल, तेज आकाश तथा वायु – पाँच जड़ देवता, माता, पिता, गुरु, श्रेष्ठजन तथा पुरुष के लिए अपनी पत्नी एवं महिला के लिये अपना पति पाँच चैतन्य देवता) की पूजा करो और देवता तुम्हें भावित करेंगे, इस प्रकार परस्पर एक दूसरे को उन्नत करते हुए कल्याण को प्राप्त करोगे।

ऋग्वेद के प्रथम मन्त्र में अग्निस्वरूप परम पिता परमात्मा को ऋत्विज कहा गया है –

अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्।
होतारं रत्नधातमम्।। १/१/१।।

परमात्मा यज्ञ को करने वाला, उसके द्वारा विभिन्न जीवनोपयोगी तथा आनन्ददायक पदार्थ उपलब्ध कराने वाला तेजस्वी पुरोहित है। हम उसकी उपासना करें। अर्थात् परमात्मा ने हमें सभी आवश्यक सामग्री यज्ञ से उपलब्ध करवाई है तथा वही यज्ञ देवताओं (पंच महाभूतों, देवपुरुषों) के द्वारा अनवरत चला रहा है। अतः कहा गया है – 'यज्ञो वै विष्णुः' अर्थात् यज्ञ संसार का पालनकर्ता है, 'यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म' तथा 'तस्मात् सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम्' – यज्ञ से श्रेष्ठ कोई कर्म नहीं है, क्योंकि सर्वव्यापी परमात्मा यज्ञ में नित्य प्रतिष्ठित रहता है।

हमारी पर्वों की परम्परा

भारतीय समाज पर्वप्रिय है। पर्व - पूरणे, का तात्पर्य है मनुष्य के जीवन में पूरकता, पूर्णता तथा नवोत्साह लाना। भारत का समाजिक जीवन वेदों पर आधारित है, अतः पर्वों का आधार भी वेद ही है। वेदों का उद्देश्य मानव जीवन का सर्वांगीण तथा निरापद विकास है। ऋतुओं का मानव के स्वास्थ्य तथा मानसिक विकास पर प्रभाव पड़ता है, अतः हमारे पर्व ऋतु आधारित हैं। मुख्यतः प्रकृति में ऋतु परिवर्तन पर होने वाले प्रभावों का मानव जीवन पर सकारात्मक प्रभाव पड़े, इसी भावना के साथ पर्वों का विधान है।

नव वर्ष चैत्र शुक्ल प्रतिपदा भारतीय पंचांग में प्रथम पर्व है। यह शीतकाल की समाप्ति तथा ग्रीष्म ऋतु के आरम्भ में आता है। इस समय वातावरण समशीतोष्ण रहता है। पुष्पों, वृक्षों में नवांकुरण होता है। सर्वत्र मनभावन तथा अधिकांशतः केसरिया रंग के पुष्पों की छवि रहती है। हमारे शास्त्रों में चैत्र तथा वैशाख को मधुमास अथवा बसन्त ऋतु कहते हैं। सृष्टि का आरम्भ ऐसे ही वातावरण में हुआ –

चैत्रमासि जगद्ब्रह्मा ससर्ज प्रथमेऽहनि।
शुक्ल पक्षे समग्रन्तु तदा सूर्योदये सति।।(हिमाद्रिग्रन्थ)

सृष्टिकर्ता ने चैत्र मास की शुक्ल प्रतिपदा को सूर्योदय के समय जगत की रचना की।

हवनात्मक यज्ञ करने से वायु का शुद्धिकरण, रोगाणु का शमन होकर हमारा पर्यावरण सम्पोषक बनता है।

शतपथ ब्रह्मण में कहा है – **भैषज्या यज्ञाः वा एते। ऋतु संधिषु व्याधिर्जायते। तस्मात्तु संधिषु प्रयुज्यन्ते।।** अर्थात् ऋतु सन्धि में होने वाले यज्ञ (होम) भैषज्य यज्ञ हैं, व्याधियों से बचने हेतु बृहत् स्तर पर किये जाते हैं। वर्तमान में पाश्चात्य अपूर्ण तथा दूषित विज्ञान के कारण रोगों के शमन हेतु वायुमण्डल तथा धरती पर रसायनों का छिड़काव किया जाता है, जिससे होने वाले तात्कालिक तनिक लाभ दीर्घावधि में पर्यावरण के लिये घातक हैं।

नववर्षारम्भ का द्वितीय पर्व 'श्रावणी पर्व' है। यह मुख्यतः स्वाध्याय का पर्व है। विदेशी आक्रमणों के बाद समाज में माता, बहनों तथा धर्म की रक्षा का विषय प्रमुख हो गया, अतः इस पर्व ने रक्षाबन्धन का रूप ले लिया। तृतीय स्थान पर विजयादशमी पर्व आता है। श्रावणी पूर्णिमा से आश्विन

शुक्ल दशमी तक वर्षा काल के कारण स्वाध्याय तथा हमारे गौरवशाली इतिहास का पठन-पाठन का समय रहता है, क्योंकि वर्षा के कारण आवागमन, व्यापार तथा युद्धाभ्यास से अवकाश रहता है। 'विजयादशमी' पर समाज में क्षात्रवृत्ति विजय की भावना जाग्रत करने हेतु भगवान श्रीराम आदि की कथाओं का मंचन, शस्त्र-पूजन आदि रहता है।

दीपावली मूलत: नवसस्येष्टि पर्व है। नवान्न के साथ परमात्मा से धनैश्वर्य एवं शुभ-लाभ की कामना की जाती है। वर्षाऋतु समाप्त हो जाती है, अत: घरों की सफाई तथा हवन द्वारा वातावरण स्वच्छ, रोगाणुरहित तथा सज्जा करके सुन्दर बनाया जाता है। कृमिनाश हेतु कार्तिक अमावस्या को दीपों की पंक्तियों (दीप-अवली) से रात्रि को प्रकाशित किया जाता है। पर्वों के क्रम में अन्तिम पर्व होली है। इसमें नवसस्येष्टि (फली वाले धान) को हवन में आधा पकाकर खाते हैं –

अर्ध पक्वशमीधान्यैस्तृणभ्रष्टैश्च होलकः।
होलकोऽल्पानिलो मेदः कफदोश्रमापहः।।

अर्थात् अर्द्धपके शमी अन्न को होला कहते हैं, अत: यह पर्व होली हो गया। होला अल्पवात् होता है, जो चर्बी, कफ और थकान को मिटाता है। बसन्तऋतु आरम्भ होने के कारण इसे वसन्तोत्सव भी कहते हैं। चैत्र-वैशाख में वसन्त, ज्येष्ठ-आषाढ़ में ग्रीष्म, श्रावण-भाद्रपद में वर्षा, आश्विन-कार्तिक में शरद, मार्गशीर्ष-पौष में हेमन्त तथा माघ-फाल्गुन में शिशिर, इस प्रकार छ: ऋतुओं की सन्धि में हवनात्मक यज्ञ द्वारा पर्यावरण की शुद्धि तथा पुष्टि करते हैं।

इन पर्वों के साथ महापुरुषों के जीवन से सम्बन्धित अनेक प्रेरणास्पद प्रसंग जुड़े हुये हैं। अत: पर्व जीवन में उत्साह, समाज में आध्यात्मिक, बौद्धिक, सांस्कृतिक क्षमता-वृद्धि तथा गौरवशाली इतिहास के परिचायक दीप-स्तम्भ हैं। कालान्तर में वेदों के पठन-पाठन के ह्रास के कारण पर्व वेदों से दूर चले गये तथा पटाखों, रासायनिक रंगों तथा अनेक अतार्किक तथा अवैज्ञानिक क्रियाकलापों से दूषित हो गये। नववर्ष प्रतिपदा पर हम सभी संकल्प लें कि हम इन पर्वों को समयानुकूल, समाजहितैषी तथा सत्पथप्रदर्शक सामाजिक एकता का पर्व बनायेंगे। ○○○

('गीता स्वाध्याय' से साभार)

पुस्तकें प्राप्त हुईं

स्वामी विवेकानन्द की बोधगया यात्रा

लेखक – स्वामी विदेहात्मानन्द
प्रकाशक – स्वामी ब्रह्मस्थानन्द
अध्यक्ष, रामकृष्ण मठ, रामकृष्ण मार्ग, धन्तोली, नागपुर – ४४० ०१२
पृष्ठ - ७७, मूल्य – २०/-

स्वामी विवेकानन्द के आविर्भाव से सम्पूर्ण जगत में एक अभिनव जागरण हुआ है । उनकी जीवनगाथा कोटि-कोटि मानवों को समाज और राष्ट्र के लिये कर्तव्य-पालन हेतु प्रेरित कर रही है । सर्वधर्मसम्मानक स्वामी विवेकानन्द जी की सनातन धर्म में अटूट निष्ठा थी । उनकी भगवान बुद्ध के प्रति अपार श्रद्धा थी । भगवान बुद्ध के ज्ञानस्थल बोधगया की स्वामीजी ने यात्रा की थी । इस पुस्तक में इसी यात्रा का रोचक एवं प्रेरक विवरण प्रस्तुत है ।

रामचरितमानस में लोकाचार

लेखक और प्रकाशक – डॉ. उग्रनाथ मिश्र
ए- १००४, कनिष्का टावर्स, सेक्टर-३४, फरीदाबाद – १२१००३, फोन-९८१८५७४४१०
पृष्ठ-२२०, मूल्य – २२५/-

धर्म प्रबोधिनी एवं भगवत तत्त्व निरूपण

संकलक एवं प्रकाशक – एस. जी. राठी
२, शिक्षक नगर, एरोड्रम रोड, इन्दौर – ५
फोन-०७३१ – ४१४४४८
पृष्ठ-६०४, मूल्य – २५०/-

सफल साहसी व तेजस्वी बनने के सूत्र

लेखक-संकलक – इंजीनियर श्रीराम अग्रवाल
प्रकाशक – श्रीरामकृष्ण विवेकानन्द सेवा समिति
सत्यनारायण मन्दिर, नरसिंह वार्ड न. – १२
डोंगरगढ़, जिला-राजनांदगाँव, ४९१४४५ (छ.ग.)
मोबाइल - ९१७९८ ४०५१७
पृष्ठ-६४, मूल्य – ३०/-

रामकृष्ण मिशन

(मुख्य कार्यालय) पो. बेलुड़ मठ, जिला-हावड़ा, पश्चिम बंगाल - ७११ २०२

ई-मेल : rkmhq@belurmath.org, **वेबसाइट** : www.belurmath.org

रामकृष्ण मिशन संचालन समिति की संक्षिप्त रिपोर्ट – वर्ष २०१६-१७

रामकृष्ण मिशन की १०८वीं वार्षिक साधारण सभा रविवार, १७ दिसम्बर २०१७ को ३.३० बजे बेलूड़ मठ में आयोजित की गयी ।

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली ने राँची, मोराबादी आश्रम के दिव्यायन कृषि विज्ञान केन्द्र को **पंडित दीनदयाल उपाध्याय राष्ट्रीय कृषि विज्ञान प्रोत्साहन पुरस्कार** (मंडल स्तर) से सम्मानित किया । प्रौढ़ शिक्षा के क्षेत्र में नरेन्द्रपुर आश्रम के लोकशिक्षा परिषद के योगदान को देखते हुये भारतीय प्रौढ़ शिक्षा संघ, नई दिल्ली ने उसे **नेहरू साक्षरता पुरस्कार** से सम्मानित किया । नरेन्द्रपुर केन्द्र के ब्लाइंड बॉयज एकेडमी और ब्रेल प्रेस ने दिव्यांगों की सेवा में अपने योगदान के लिये **राष्ट्रीय दिव्यांग सशक्तीकरण पुरस्कार** जीता । बोम्मीदल श्रीकृष्ण मूर्ति संगठन, गुंटूर ने राजमहेन्द्रवरम् केन्द्र को समाज-सेवा के क्षेत्र में किये गये योगदान हेतु **स्फूर्ति पुरस्कार** प्रदान किया ।

स्वामी सारदानन्द, स्वामी अखण्डानन्द, स्वामी अभेदानन्द, स्वामी सुबोधानन्द और भगिनी निवेदिता के १५०वीं जन्म जयन्ती के समारोह के उपलक्ष्य में विभिन्न केन्द्रों में विविध कार्यक्रम आयोजित हुये ।

मध्यप्रदेश के ग्वालियर में रामकृष्ण मिशन का नया केन्द्र आरम्भ हुआ । **नई दिल्ली** के **बसन्त विहार, ओडिशा** के **कटक** और **पश्चिम बंगाल** के **वर्धमान** में तीन उप-केन्द्र आरम्भ हुए । **केरल** के **कायमकुलम्**, **तमिलनाडु** के **रामनाथपुरम्** में रामकृष्ण मठ के दो नए केन्द्र आरम्भ हुए और **कोलकाता** में **कथामृत भवन** नये उप-केन्द्र को शुरू किया गया । भारत के बाहर, रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन का एक संयुक्त केन्द्र **बांगलादेश** के **चांदपुर** में आरम्भ किया गया । **अमेरिका के वेदान्त सोसाइटी आफ ग्रेटर हौस्टन** को रामकृष्ण मठ का केन्द्र बनाया गया । **रामकृष्ण वेदान्त सेन्टर, लुसाका, जाम्बिया** को रामकृष्ण मिशन में पुन: विलय किया गया ।

शिक्षा के क्षेत्र में निम्नलिखित परियोजनाएँ विशेष उल्लेखनीय हैं :

(१) **रामकृष्ण मिशन, कोयम्बटूर** ने "Journal of Disability Management and Special Education" नामक ई-पत्रिका आरम्भ की ।

(२) **रामकृष्ण मिशन, नरेन्द्रपुर** के 'औद्योगिक प्रशिक्षण केन्द्र' ने तीन नए पाठ्यक्रम आरम्भ किये ।

चिकित्सा सेवा के क्षेत्र में निम्नलिखित परियोजनाएँ उल्लेखनीय हैं :

(१) **रामकृष्ण मिशन, ईटानगर** ने तीन नये विभाग – (री प्रोडक्टीव मेडीसीन (इनफर्टीलीटी), युरोलाजी एन्ड रीनल ट्रान्सप्लाटेशन और योगथिरेपी तथा नेचुरोपैथी मेडीसीन) आरम्भ किये । (२) **रामकृष्ण मिशन, लखनऊ** ने 7 Modular Operation Theatres की स्थापना की । (३) **रामकृष्ण मिशन, सेवा प्रतिष्ठान** ने आधुनिक उपकरणों से युक्त 'उच्च निर्भरता इकाई' (गहन-चिकित्सा केन्द्र (ICU) के अंग) की शुरुआत की ।

ग्रामीण विकास के क्षेत्र में विशेष उल्लेखनीय नई परियोजनाएँ हैं :

(१) **रामकृष्ण मिशन, ग्वालियर** ने १५० किसानों के लिए कार्यशाला का आयोजन किया और शारदा बालग्राम में ८०० पौधारोपण किया । (२) **रामकृष्ण मिशन, लखनऊ** ने ग्राम-स्वास्थ्य केन्द्र प्रारम्भ किया । (३) **रामकृष्ण मिशन, नरेन्द्रपुर** ने बच्चों के लिए दस-दस बिस्तरों के दो आवास निर्मित किये और ४५ जलाशयों का निर्माण किया । (४) **रामकृष्ण मिशन, नई दिल्ली** ने १०० Twin Pit Pour Flush (TPPF) शौचालयों का निर्माण किया । (५) **रामकृष्ण मिशन, मोराबादी राँची** ने २०० महिला स्वयं

सहायता समूह को कृषि उद्यमिता के क्षेत्र में सशक्त बनाने के लिये 'जीविकोपार्जन तथा उद्यम विकास कार्यक्रम (LEDP) प्रारम्भ किया । इसी आश्रम ने २७ (Nadep Compost Tanks), ५७ बकरी-पालन इकाइयों का निर्माण और सिंचाई के लिये सौर-पंप लगाए । (६) **रामकृष्ण मिशन, सारगाछी** ने किसानों के लिए मिट्टी-परीक्षण प्रयोगशाला प्रारम्भ की ।

स्वच्छ भारत अभियान के तहत निम्नलिखित कार्यक्रम विशेष उल्लेखनीय हैं :

(१) **रामकृष्ण मिशन, कोयम्बटूर विद्यालय** के विभिन्न शैक्षणिक संस्थाओं के छात्रों ने ४६ सफाई अभियान चलाये, जिसमें कई सार्वजनिक स्थानों की सफाई की गई । (२) **रामकृष्ण मिशन, ग्वालियर** के छात्रों ने एक शोभायात्रा में भाग लिया और स्वच्छता अभियान पर एक नाटक का मंचन किया, जिसे ११७ देशों में प्रसारित किया गया । (३) **रामकृष्ण मिशन, मंगलूर** ने ३०० स्वच्छता अभियान चलाए, जिसमें करीब ३५,००० लोगों ने भाग लिया ।

रामकृष्ण मठ के अन्तर्गत निम्नलिखित नई परियोजनायें उल्लेखनीय हैं :

(१) **रामकृष्ण मिशन, तिरुवनन्तपुरम्** ने अपने अस्पताल में ५ ऑपरेशन थिएटरों का एक ऑपरेशन ब्लाक स्थापित किया । (२) **चेन्नई मठ** ने अपनी ग्रामीण विकास इकाई के लिये चेन्नई के पास मेय्यूर गाँव में एक भवन का निर्माण किया । (३) **बेलूर मठ प्रांगण** में 'माँ सारदा सदाव्रत' नामक संयुक्त रसोई-कक्ष-भोलजनालय का संचालन हो रहा है । (४) **रामकृष्ण मिशन, मैसूर** द्वारा मैसूर शहर में ५६ स्थानों पर सफाई अभियान चलाया गया ।

विदेशों में निम्नलिखित नई परियोजनायें विशेष उल्लेखनीय हैं :

(१) **रामकृष्ण मिशन, बांग्लादेश** ने अपने आश्रम का शताब्दी समारोह विविध कार्यक्रमों द्वारा मनाया तथा इस अवसर पर 'प्रबोधन' नामक एक चातुर्मासिक पत्रिका का शुभारम्भ किया । (२) **दक्षिण अफ्रिका** के **डरबन** और इसके उप-केन्द्र **लेडिस्मिथ** में स्वामी विवेकानन्द की प्रतिमायें स्थापित की गईं । (३) **सेन फ्रांसिस्को** ने पुराने मन्दिर का जीर्णोद्धार कर पुनर्प्रतिष्ठा की तथा इस अवसर पर एक स्मारिका का विमोचन भी किया गया ।

इस वर्ष में रामकृष्ण मिशन ने सेवा-कार्य के अन्तर्गत गरीब छात्रों, वृद्ध, बेसहारा एवं बीमार लोगों को आर्थिक सहायता के रूप में १९.६७ करोड़ रुपये आबंटित किये ।

१० चिकित्सालयों, ७८ औषधालयों, ४१ सचल चिकित्सा इकाइयों और ८३४ चिकित्सा शिविरों के द्वारा ७०.६९ लाख लोगों को **चिकित्सा सेवा** प्रदान की गई, जिसमें २०९.५० करोड़ रूपये व्यय किये गये ।

शिक्षा के क्षेत्र में शिशु विद्यालय से विश्वविद्यालय तक अनौपचारिक शिक्षा केन्द्रों, रात्रि पाठशाला, कोचिंग कक्षा आदि शिक्षण संस्थानों में लगभग २.३१ लाख छात्र थे, जिन पर ३१३.३३ करोड़ रुपये खर्च किए गए ।

ग्रामीण और आदिवासी विकास परियोजनाओं में ६८.०४ करोड़ रुपये व्यय हुये, जिनसे ७३.०४ लाख लोग लाभान्वित हुये ।

रामकृष्ण मिशन और रामकृष्ण मठ ने देश के विभिन्न भागों में कई **राहत और पुनर्वास कार्य** किये, जिनमें ४१.०८ करोड़ व्यय कर ५.८६ लाख परिवारों के ११.६५ लाख लोगों को सहायता प्रदान की गई ।

आज इस अवसर पर हम रामकृष्ण मिशन के सदस्यों और मित्रों के प्रति हार्दिक धन्यवाद व्यक्त करते हैं ।

(स्वामी सुवीरानन्द)
महासचिव
१७ दिसम्बर, २०१७

प्रकाशन सम्बन्धी विवरण

(फार्म ४ नियम ८ के अनुसार)

१. प्रकाशन का स्थान - रायपुर

२. प्रकाशन की नियतकालिकता - मासिक

३.-४. मुद्रक एवं प्रकाशक - स्वामी सत्यरूपानन्द

५. सम्पादक - स्वामी प्रपत्त्यानन्द

राष्ट्रीयता - भारतीय

पता - रामकृष्ण मिशन, विवेकानन्द आश्रम, रायपुर (छ.ग.)

स्वत्वाधिकारी - रामकृष्ण मिशन, बेलूड़ मठ के ट्रस्टीगण - स्वामी स्मरणानन्द, स्वामी प्रभानन्द, स्वामी सुहितानन्द, स्वामी भजनानन्द, स्वामी शिवमयानन्द, स्वामी गौतमानन्द, स्वामी वागीशानन्द, स्वामी गिरीशानन्द, स्वामी विमलात्मानन्द, स्वामी दिव्यानन्द, स्वामी सुवीरानन्द, स्वामी बोधसारानन्द, स्वामी तत्त्वविदानन्द, स्वामी बलभद्रानन्द, स्वामी सर्वभूतानन्द, स्वामी लोकोत्तरानन्द, स्वामी ज्ञानलोकानन्द, स्वामी अभिरामानन्द और स्वामी मुक्तिदानन्द।

मैं स्वामी सत्यरूपानन्द घोषित करता हूँ कि ऊपर दिए गए विवरण मेरी जानकारी और विश्वास के अनुसार सत्य हैं।

(हस्ताक्षर)
स्वामी सत्यरूपानन्द